इष्टोपदेश

आचार्य पूज्यपाद स्वामी

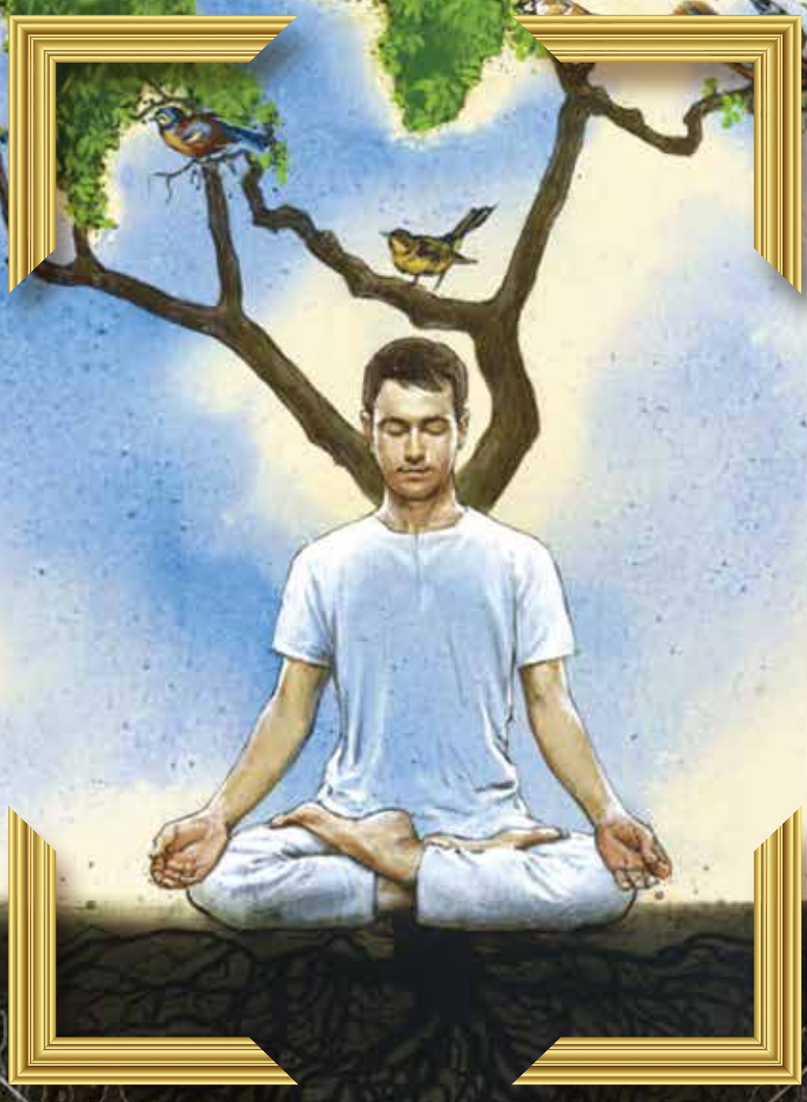

इष्टोपदेश

GURU KAHAN
ART MUSEUM

ॐ

સહજ મિલાનંદ.

Exhibit

GURU KAHAN ART MUSEUM

www.gurukahanmuseum.org

Sponsor

Shree Kundkund - Kahan Parmarthik Trust
Mumbai

Organiser

PAINTERNET ART EXCHANGE

www.painternet.com

First Published 2024
By Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai

All rights reserved only with:
Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust
302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg,
Vile Parle (West), Mumbai - 400056.INDIA
Tel. No.: +91 22 2613 0820 / 75068 27160
Telefax: +91 22 2610 4912
Email: info@vitragvani.com
Web: www.vitragvani.com

No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form or by means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the publishers.

Conceptualized by **Nikhil Mehta & Rahul Jain**
Design by **Forestbell Design Solutions LLP**
Photography by **Mr. Vipul Patel**
Edited and visualized by **Rahul Jain**

ISBN No.: 978-93-81057-55-1
Price: INR 500/- & US 10$

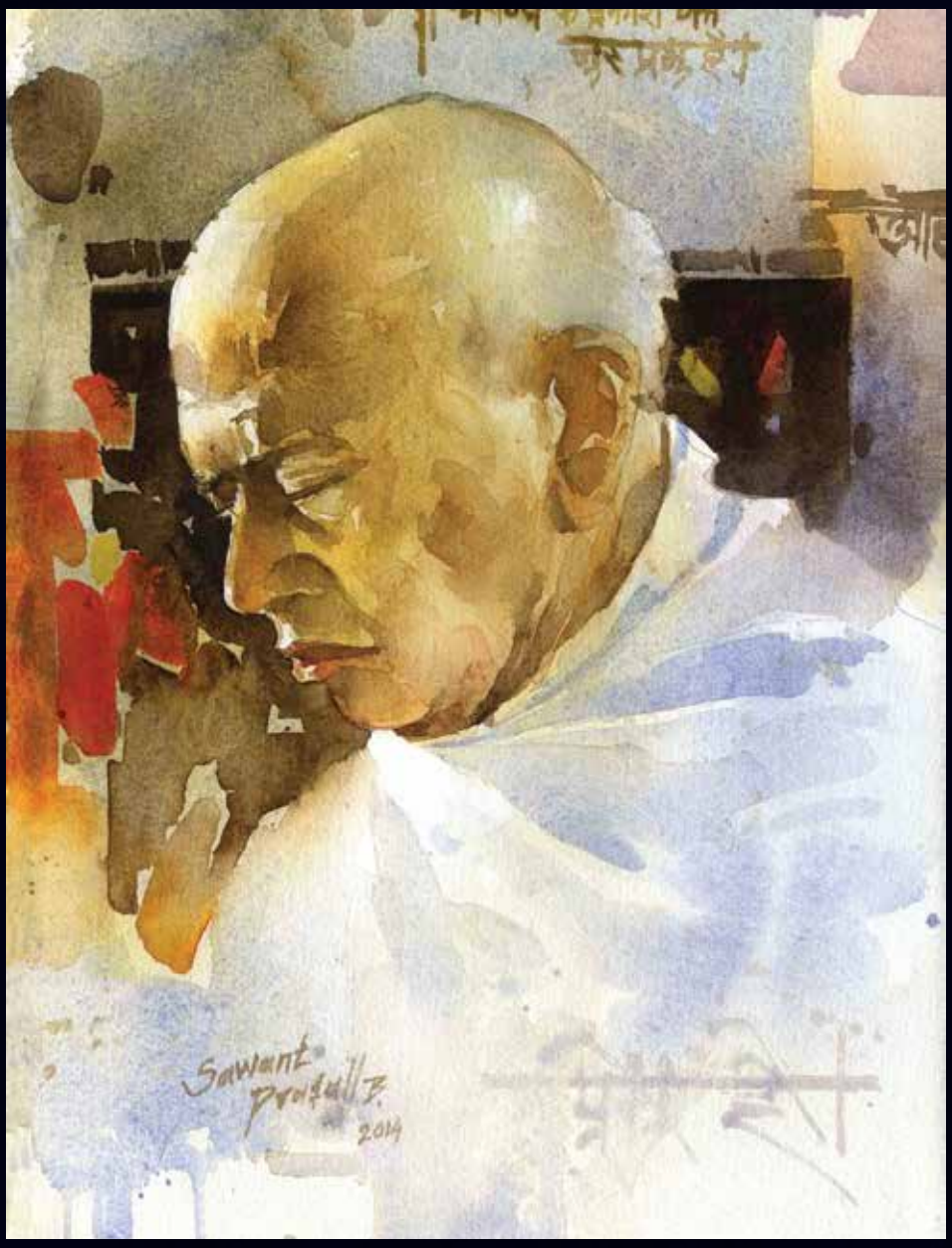

अध्यात्मयुगसृष्टा

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

आचार्य पूज्यपाद स्वामी द्वारा विरचित श्री इष्टोपदेश

प्रकाशकीय

प्रमाणमकलंकस्य, पूज्यपादस्य लक्षणम् ।
धनञ्जयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ।।

जैन न्याय साहित्य जगत में जिन आचार्यों का नाम बडे ही गौरव व आदर के साथ लिया जाता है उनमें से एक हैं आचार्य पूज्यपाद स्वामी अपरनाम देवनन्दि स्वामी। वे सुप्रसिद्ध, प्रतिभाशाली, प्रखर वक्ता, तार्किक विद्वान और महा तपस्वी आचार्य थे। विक्रम की पाँचवी-छठवीं शताब्दी में पूज्य देवनन्दि स्वामी इस भारत भूमि को अपनी उपस्थिति से पवित्र कर रहे थे। माना जाता है कि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए परन्तु आगे चलकर उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार की।

आपके जीवन में अनेकानेक आश्चर्यजनक घटनायें भी घटित हुई, जैसे धर्म का उद्धार करने के कारण स्वर्गलोक के देवों ने आपकी पूजा-भक्ति की अतः आप 'पूज्यपाद' कहलाये। आप समस्त शास्त्र विषयों में पारंगत थे, कामदेव को जीतने वाले थे अतः योगियों द्वारा आप 'जिनेन्द्रबुद्धि' भी कहलाये। आपने अपने जीवन में विभिन्न ग्रन्थों की रचना की जिनमें जैनेन्द्र व्याकरण, शब्दावतार, सर्वार्थसिद्धि, समाधितंत्र एवं इष्टोपदेश प्रमुख हैं।

श्री इष्टोपदेश जी तो मानो गागर में सागर सूक्ति को चरितार्थ करता है, आचार्य देव ने इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण जिनागम का मर्म मात्र ५१ श्लोकों में भर दिया है। इस अध्यात्म ग्रन्थ में इष्ट आत्मा के स्वरूप का परिचय प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ की भाषा सरल, अर्थ सरल व मर्म अत्यंत गंभीर है। बालक हो या वृद्ध, सभी को यह ग्रन्थ व इसकी विषयवस्तु अत्यंत सुबोध है।

ऐसे महान ग्रन्थ श्री इष्टोपदेश जी पर चित्रकला श्रृंखला के निर्माण का कार्य श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई व गुरु कहान कला संग्रहालय, सोनगढ टीम के अथक प्रयासों से ही संभव हो पाया है। इस महान कार्य में जिन्होंने अपनी चित्रकला का सर्वोत्तम प्रदर्शन दिखाया ऐसे कलाकार श्री मनोज जी सकाले, मुम्बई के भी हम आभारी हैं, जिन्होंने जैन सिद्धान्तों को चित्रों में स्थापित करके उन्हें जीवंत रूप प्रदान किया। सभी जीव इन चित्रों को देखकर, उनमें निहित अर्थ को समझकर आत्मस्वरूप के लक्ष्यी बनें, इसी पवित्र भावना के साथ...

– श्री नेमिष शाह,
ट्रस्टी: श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

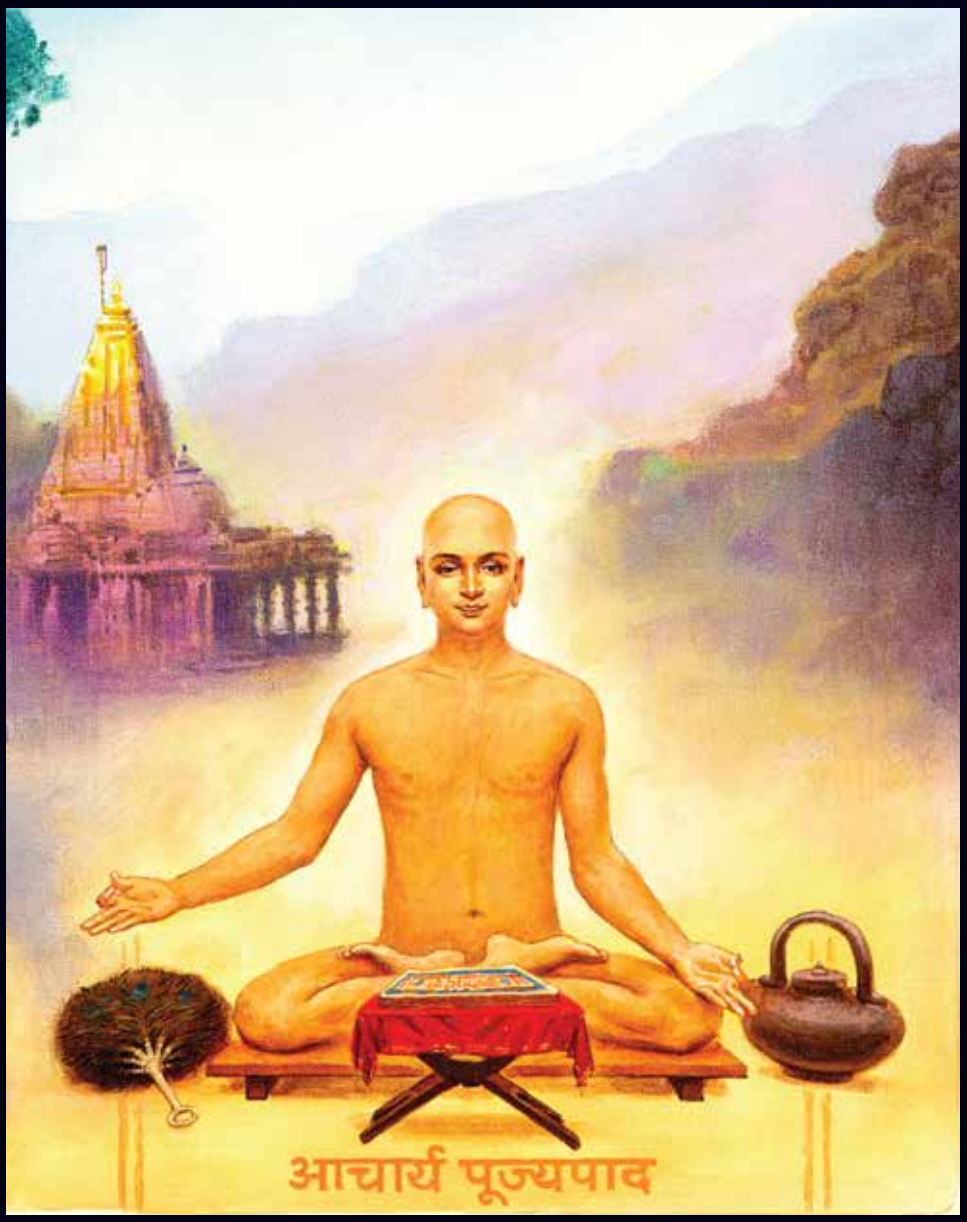

इष्टोपदेश के रचयिता

आचार्य पूज्यपाद स्वामी

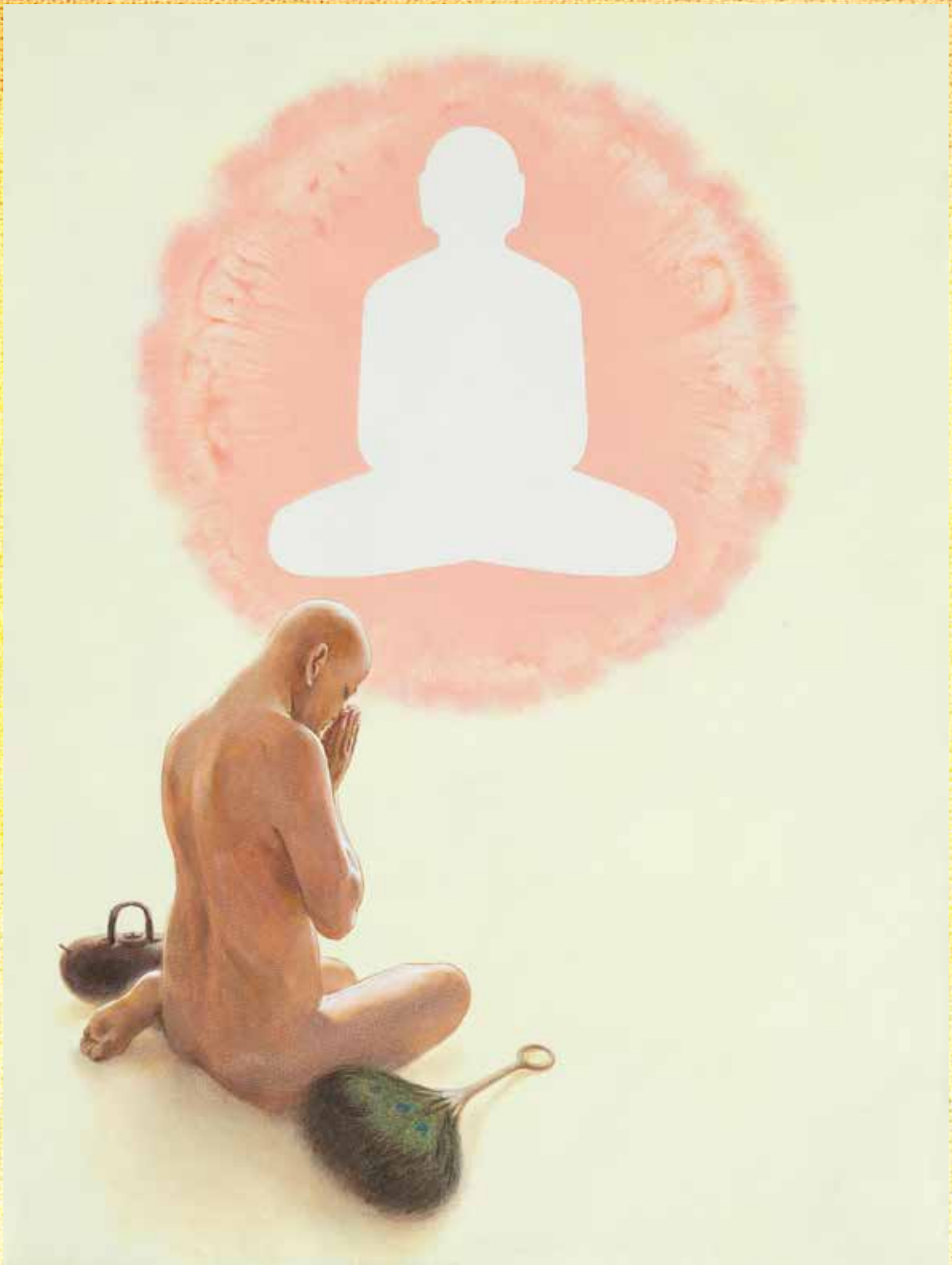

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

स्वयं कर्म सब नाश करि, प्रगटायो निजभाव। परमातम सर्वज्ञ को, वंदो करि शुभ भाव ।।१।।

अर्थ: हे सर्वज्ञ परमात्मा! हे जिनेन्द्र देव! आपने अपने अपूर्व पुरुषार्थ से अपने निजस्वभाव को प्रकट करके समस्त कर्मों का सर्वथा अभाव कर दिया है। जिसके फलस्वरूप आप तीनलोक-तीनकाल के पूर्ण ज्ञानी हैं, वीतरागी हैं और अपने पूर्ण निर्मल स्वभाव के आनन्द में मग्न हैं। इसीलिये हे भगवन्! मैं भी आप ही के समान कर्मों के नाश द्वारा पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति के संकल्प के साथ आपको नमस्कार करता हूँ।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

स्वर्ण पाषाण सुहेतु से, स्वयं कनक हो जाय। सुद्रव्यादि चारों मिलें, आप शुद्धता थाय।।२।।

अर्थ: स्वर्णरूप परिणमन की योग्यता वाले पत्थर में छिपे सोने को जिसप्रकार अग्नि में ही तपाकर शुद्ध किया जा सकता है, प्रगट किया जा सकता है अर्थात एकमात्र स्वर्ण की पूर्ण शुद्धता में अग्नि ही कारण है अन्य नही; उसी प्रकार संसार में रहने वाले आत्मा की शुद्धता में उसी के अनुरूप शुद्ध द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की उपादानगत योग्यता ही कारण है, अन्य नही। इनकी सम्पूर्णता हो जाने पर आत्मा निश्चल एवं पूर्ण निर्मल हो जाता है। संसार से निकलकर परमात्मा होने का यही मार्ग है।

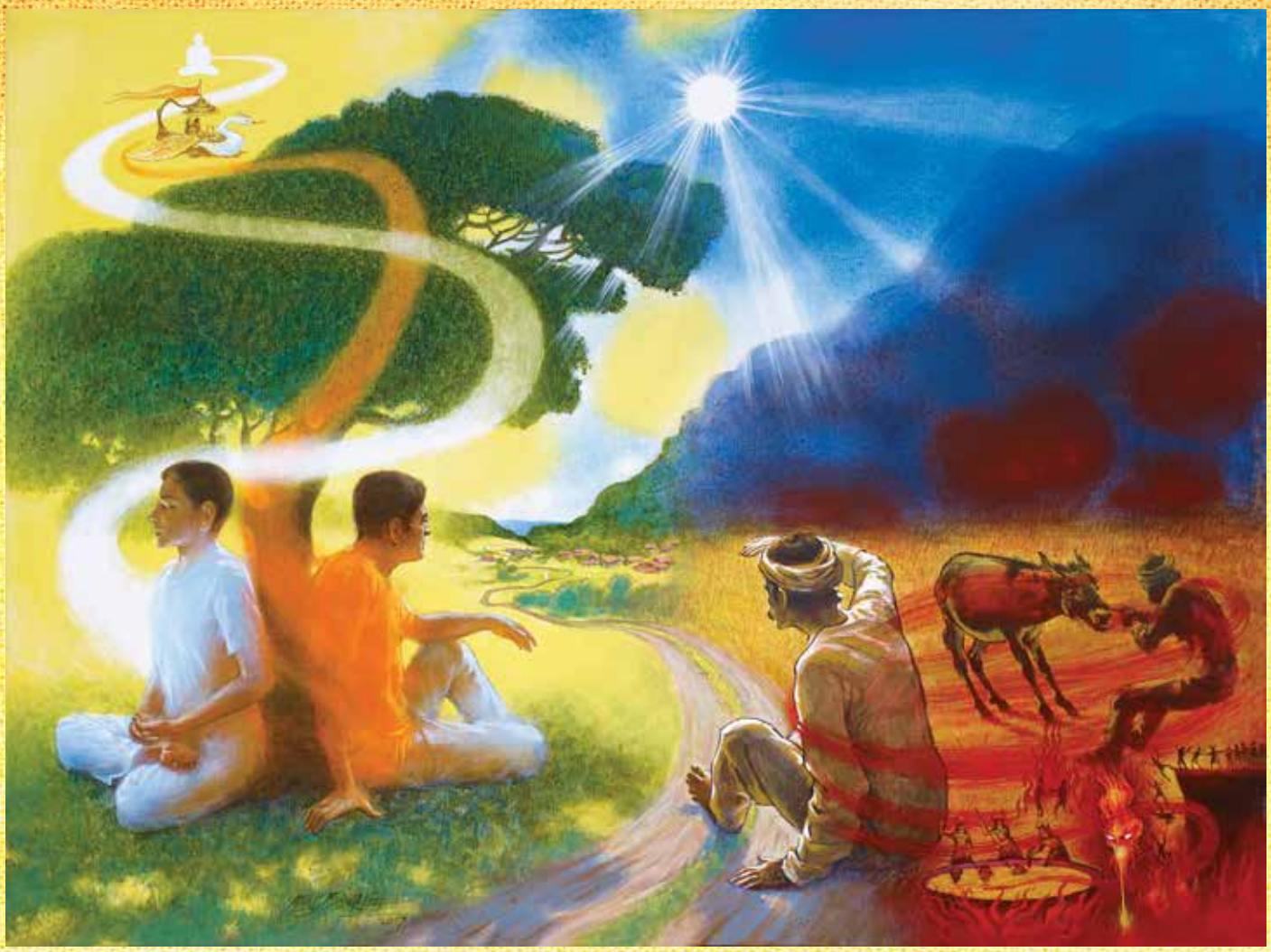

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

मित्र राह देखत खडे, इक छाया इक धूप । व्रतपालन से देवपद, अव्रत दुर्गति कूप।।३।।

अर्थ: एक बार तीन मित्र नगर से बाहर की ओर किसी कार्य से जाने लगे और बीच में ही उनमें से एक मित्र को किसी कारण से पुनः नगर में जाना पडा, अब बाकि दो मित्र उसके वापिस आने की प्रतीक्षा करने लगे - जिनमें से एक छांव में बैठा है और एक धूप में। ध्यान से देखने पर दोनों में बहुत बडा अन्तर दिखाई देता है। क्योंकि छांव में बैठकर प्रतीक्षा करने वाला व्यक्ति सुख से समय व्यतीत करता है और धूप में बैठकर प्रतीक्षा करने वाला दुख से। क्योंकि प्रतीक्षा तो दोनों को ही करनी है लेकिन समझदारी स्थान चुनने में है। उसीप्रकार जब तक हमें पूर्ण सुख की प्राप्त नही होती, तबतक व्रतादिक का आचरण करने वाला स्वर्गादिक में आनन्द के साथ रहता है और अव्रती पुरुष नरकादिक में दुख भोगता है। अतः व्रतादिक का पालन निरर्थक नही अपितु सार्थक है।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

आत्मभाव यदि मोक्षप्रद, स्वर्ग है कितनी दूर। दोय कोस जो ले चले, आध कोस सुख पूर।।४।।

अर्थ: जिसप्रकार कोई व्यक्ति भार उठाकर दो कोस तक आसानी से चलता है तो क्या उसके लिये भार सहित आधा कोस चलने में कोई समस्या हो सकती है? अवश्य नही! क्योंकि जिसने दो कोस का रास्ता सहजता से पार कर लिया वह आधे कोस के लिये क्यों परेशान होगा? क्योंकि अधिक शक्तिवान व्यक्ति के लिये अल्पशक्ति वाले कार्य तो स्वाभाविक ही है। ठीक उसीप्रकार जिस उत्कृष्ट आत्मपरिणाम से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, उन परिणामों से स्वर्गादिक की प्राप्ति तो सहज ही है।

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

इन्द्रियजन्य नीरोगमय, दीर्घकाल तक भोग्य। स्वर्गवासि देवानिको, सुख उनहीके योग्य।।५।।

अर्थ: स्वर्ग में निवास करने वाले जीवों को स्वर्ग में इन्द्रिय जनित वैसा ही सुख होता है, जैसा कि स्वर्ग में रहने वालों देवों को हुआ करता है, अर्थात स्वर्ग में रहने वाले देवों का ऐसा अनुपमेय (उपमा रहित) सुख हुआ करता है कि उस सरीखा अन्य सुख बतलाना कठिन ही है। उन्नत विमान, सुन्दर वातावरण, मनोहारी देव-देवियाँ और निरोगी शरीर; यह सब इन्द्रिय जनित सुख ही है। जो किसी राजा व शत्रु इत्यादि के द्वारा हरण को प्राप्त नही होता अर्थात यह सुख सर्व प्रकार के आतंक अर्थात भय से रहित है तथा भोगभूमि की भाँति अल्पकालीन नही अपितु यह सुख तो सागरोपम काल तक बने रहने वाला है।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

विषयी सुख–दुख मानते, है अज्ञान प्रसाद। भोग रोगवत् कष्ट में, तन मन करत विषाद।।६।।

अर्थ: आश्चर्य है कि एक पक्षी का जोडा तपती धूप में भी एक–दूसरे के साथ रहने पर संतोष से रहता हैं लेकिन जब रात्रि के समय उनमें से एक का भी वियोग हो जाता है तो मानो चन्द्रमा की शीतल किरणे भी उनके मन के संताप को दूर नही कर पाती, उनका हृदय दूसरे के वियोग से संतप्त रहता है, आकुलित हो उठता है। इससे पता चलता है कि इन इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला यह सुख मात्र वासना ही है, भ्रम ही है, अनाकुल एवं वास्तविक नही हैं। हम भी जिस इन्द्रिय सुख के पीछे दिन–रात एक कर देते हैं, न्याय–विवेक के बिना बस इन भोगों की ही चाह में लगे रहते हैं उन भोगों से प्राप्त सुख की दास्तान का अंत वियोग पर ही होता है, ये सुख ये भोग; रोग आने पर, अनिष्ट संयोग होने पर या व्यवधान आने पर निश्चित ही दूर हो जाते हैं। अतः देहधारियों का सुख व दुख; दोनो ही कल्पनामात्र है, वास्तविक सुख तो आत्मस्वभाव में ही है।

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

मोहकर्म के उदय से, वस्तुस्वभाव न पात। मदकारी कोदों भखें, उल्टा जगत लखात।।७।।

अर्थ: लोक में प्रसिद्ध है कि नशीली वस्तु खाने से नशा ही पैदा होगा और नशे में धुत व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है। वह जाने हुए पदार्थों को भी भूल जाता है, जानने में आने वाले पदार्थों का भी ठीक प्रकार से ज्ञान नहीं कर पाता अर्थात इस नशे के कारण ज्ञानवान पुरुष भी अज्ञानियों की भाँति आचरण करता है। ठीक उसीप्रकार आत्मा व उसका ज्ञानगुण यद्यपि अमूर्त है फिर भी मूर्तिमान कर्मादि से मिलकर वह गुण भी पत्थर की भाँति आवरणित हो जाते हैं। जिसकारण अपने से प्रत्यक्ष भिन्न जड पदार्थों में जीव अपनत्व करता है, उनका वियोग होने पर खेद-खिन्न होता है, ज्ञानियों द्वारा समझाये जाने पर भी पथभ्रष्ट होकर अज्ञानी की भांति आचरण करता है।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

पुत्र मित्र घर तन तिया, धन रिपु आदि पदार्थ। बिल्कुल निज से भिन्न हैं, मानत मूढ निजार्थ।।८।।

अर्थ: हे जीव! ये शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु इत्यादि सभी अन्य स्वभाव को लिये हुए परद्रव्य हैं तथा उनके निमित्त से होने वाले विभाव-भाव भी तेरे स्वभाव से भिन्न है, तुझसे युक्त नही। तू मोहवश इन्हें निज जानकर इन्हीं में रत रहता है। अनादिकालीन मोहनीय कर्म के कारण ये अपने प्रतीत होते हैं परन्तु ये अपने नही। इस सम्यग्ज्ञान का भान हुए बिना मूढ जीव मोहनीय कर्म के जाल में फंसकर दिन-रात इन्हीं की प्राप्ति और इन्ही के पालन में अपना भव और भाव दोनों बिगाड लेता है।

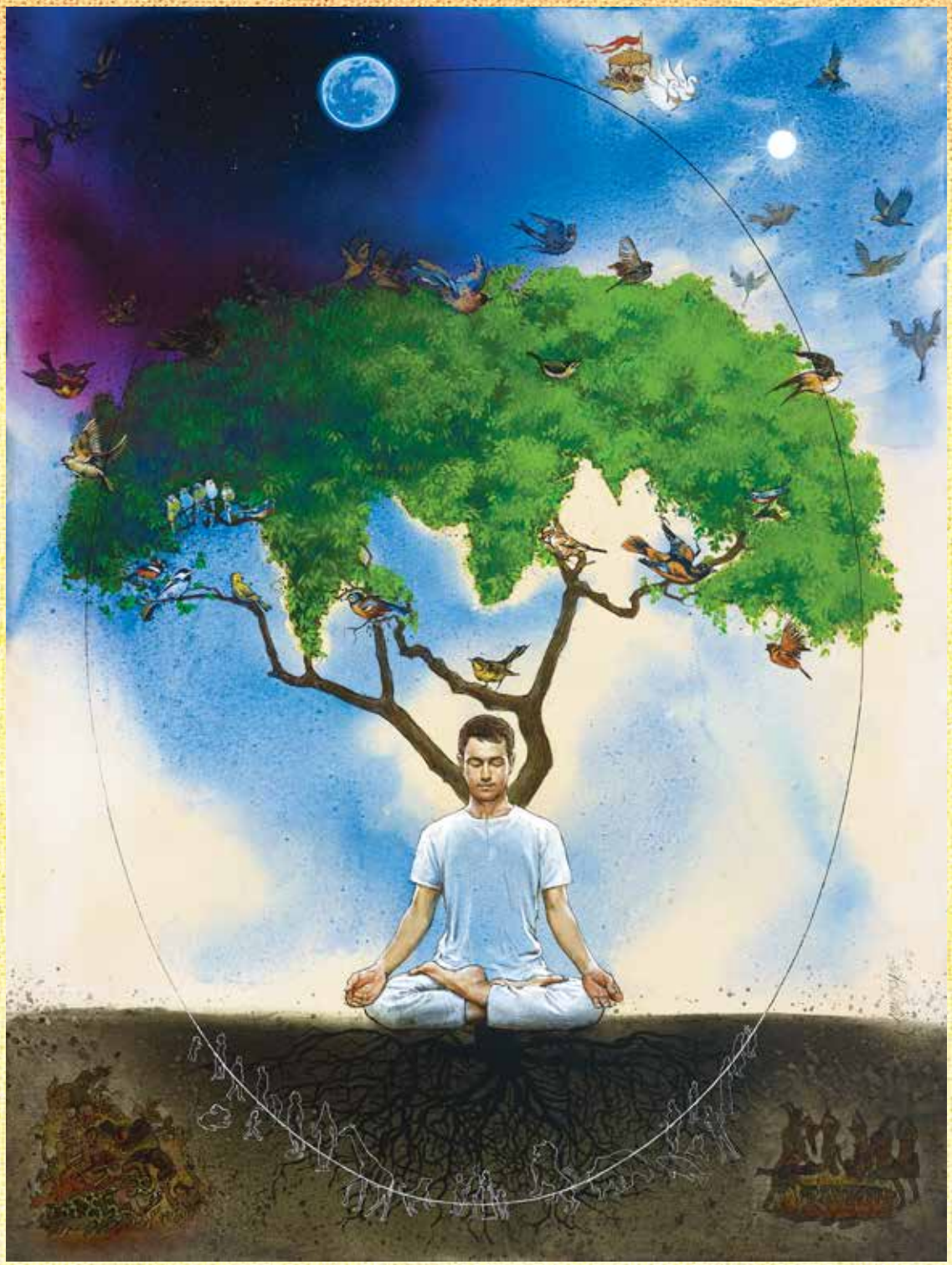

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

दिशा देश से आयकर, पक्षी वृक्ष बसन्त। प्रात होत निज कार्यवश, इच्छित देश उडन्त ।।९।।

अर्थ: जिसप्रकार भिन्न-भिन्न दिशाओं व देशों से उडकर पक्षीगण वृक्षों पर आ बैठते हैं, रात रहने तक वहीं बसेरा करते हैं और सुबह होने पर फिर से अनिश्चित दिशा व देश की ओर उड जाते हैं। उनका ऐसा कोई नियम तो नही कि जिस दिशा से आये हैं उसी ओर वापिस जायें। ऐसी ही दशा संसारी जीवों की है। कर्मोदय से यह जीव नरकादि गतियों से आकर एक कुल में अपनी आयु प्रमाण रहता है और कर्म के ही अनुसार आयु पूर्ण होने पर भिन्न -भिन्न गतियों की ओर बढ जाता है। हे जीव! जब यह वास्तविकता तुझे ज्ञात होती है तो क्यों इन क्षणभर के संयोगों के लिये पूरा जीवन कषाय आदि विभाव भावों में व्यतीत कर देता है। ऐसा न समझ कि ये तेरे द्वारा एकत्रित है अपितु ये तो स्वयं ही आये थे और स्वयं ही चले जायेंगे। अतः मोहनीय पिशाच के आवेश को दूर हटाकर स्वरूप को देखने की चेष्टा कर!

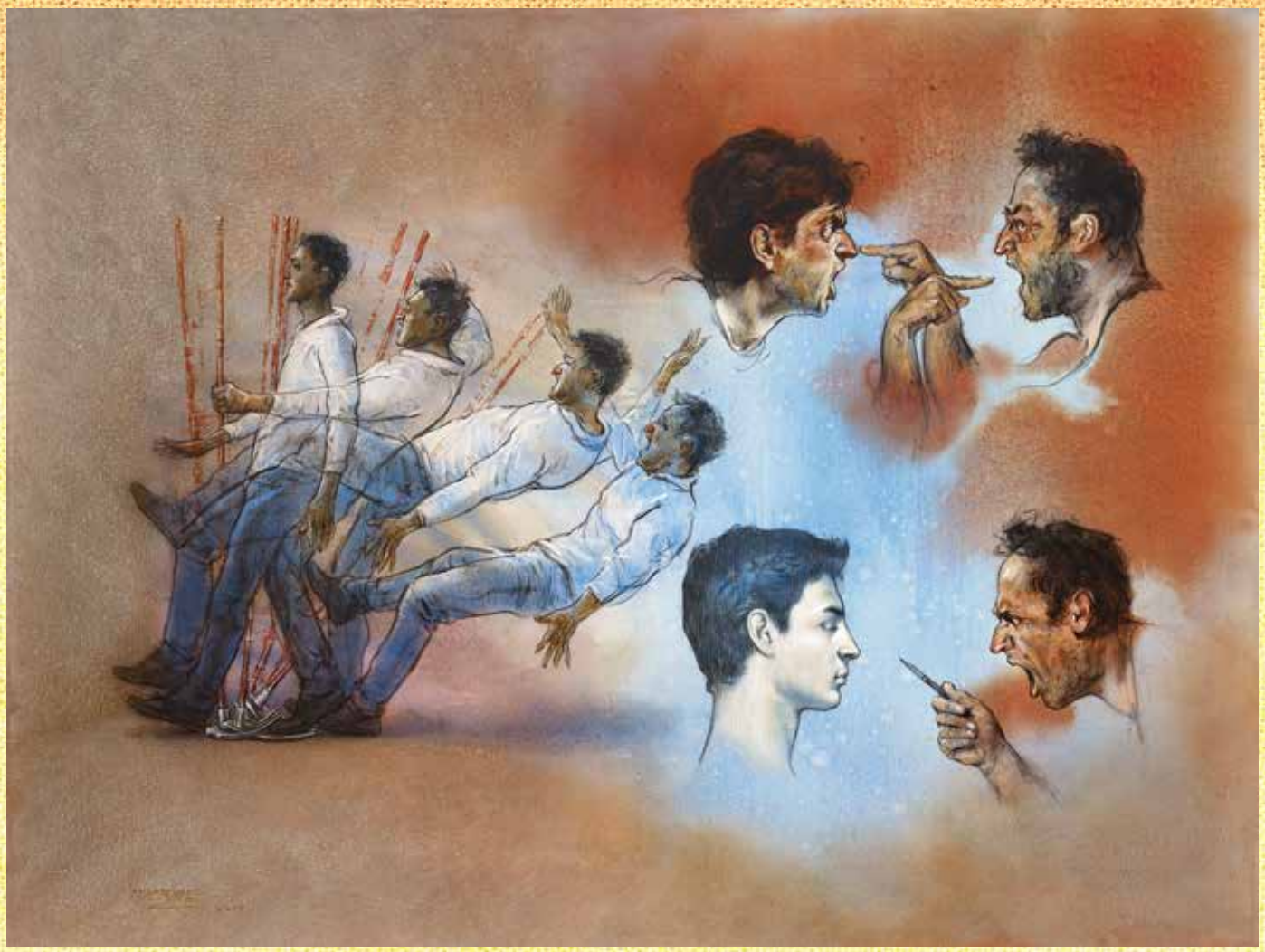

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

अपराधी जन क्यों करे, हन्ता जनपर क्रोध। दो पग अंगुल महि नमे, आपहि गिरत अबोध ।।१०।।

अर्थ: जो जीव सदा दूसरों का अपकार ही करता है, उसके साथ जब कोई अन्य बुरा करे तो वह क्रोधित क्यों होता है? क्योंकि संसार में यह रीति है कि जो किसी को सुख या दुख पहुँचाता है वह उसके द्वारा सुख या दुख को प्राप्त करता है और यही कर्मों की व्यवस्थित व्यवस्था है। जिसप्रकार बिना विचार किए काम करने वाला पुरुष सफाई में उपयोग में लिये जाने वाले त्रयंगुल यंत्र को जमीन पर गिरा देता है। परन्तु उस पर पैर पडने से वह बिना किसी प्रयत्न के ऊपर उठता हुआ उस पुरुष को ही गिरा देता है। यही सत्य है कि अहित करने वाला व्यक्ति दूसरे के साथ-साथ अपना भी अहित ही करता है अतः हित के इच्छुक बुद्धिमान पुरुषों को उनसे द्वेष नही करना चाहिये।

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

मथत दूध डोरीनितें, दंड फिरत बहु बार। राग द्वेष अज्ञान से, जीव भ्रमत संसार ।।११।।

अर्थ: हे जीव! दो डोरीयों से बंधे उस दंड का विचार कर जो मथानी में दिन-रात बस खींचतानी में जुटा रहता है, वे रस्सियाँ उसे छोडती नही। उसी दंड की तरह यह जीव भी दिन-रात बस राग-द्वेष के बंधनों में फंसकर चतुर्गति रूप संसार समुद्र में घूम रहा है और घूमता ही रहेगा। जब तक ये राग-द्वेष की रस्सियों से बंधा है तब तक इस चक्र से निकलना असंभव है। अतः हे मोक्षार्थी! सम्पूर्ण पुरुषार्थ से इन बंधनों को छोड! तेरा कल्याण होगा।

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

जबतक एक विपद टले, अन्य विपद बहु आय। पदिका जिमि घटियंत्र में, बार बार भरमाय ।।१२।।

अर्थ: एक किसान कूएँ से सिंचाई हेतु पानी निकालने के लिये घटियंत्र को अपने पैरों से चलाता है, एक पटली पर पैर रखता है तो दूसरी ऊपर आ जाती है, दूसरे पर पैर रखता है तो तीसरी ऊपर आ जाती है, ये पूरी प्रक्रिया उसकी इच्छानुसार ही हो रही है। यदि वह ऐसा करना ना चाहे और इस पदावर्त के चक्र से बाहर निकलना चाहे तो कौन रोकने में समर्थ है? हे जीव! यह संसार भी घटियंत्र जैसा ही है। इस संसार में एक विपत्ति दूर करते ही तुरंत ही अन्य अनेक विपत्तियाँ उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में तो ये इच्छायें ही विपदा है। इनका निवारण भी तेरे ही हाथ में है। इसलिए संसार अवश्य ही नाश करने योग्य है। जरा विचार कर!

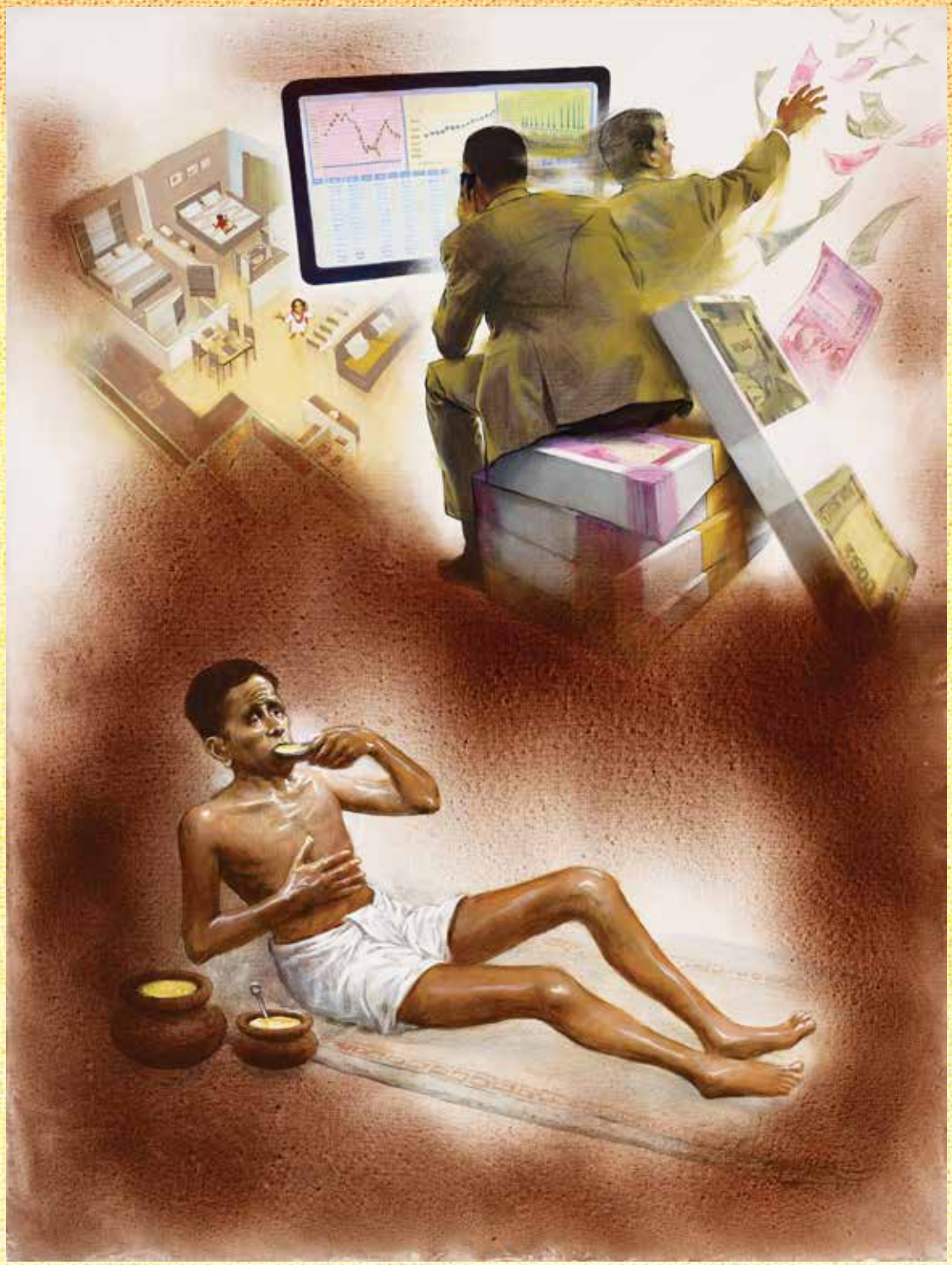

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

कठिन प्राप्त संरक्ष्य ये, नश्वर धन पुत्रादि। इनसे सुख की कल्पना, जिमि घृत से ज्वर व्याधि ।।१३।।

अर्थ: साधारण सी बात है, यदि कोई जीव सामज्वर (ठंड देकर आने वाले बुखार) से पीडित है और वह बुद्धि का ठिकाना ना रहने से घी इत्यादि पीकर या उसकी मालिश से सोचे कि अब तो 'मैं स्वस्थ हूँ' तो जगत उसे मूर्ख ही कहेगा। क्योंकि भले ही जगत में घी पौष्टिक आहार है परन्तु ज्वर में घी भी हानिकारक है। उसी प्रकार ये जीव अत्यंत कठिनाई से उत्पन्न होने वाले धन-सम्पदा व स्त्री आदिक भोग एकत्रित करता है; ऐसे भोग जो मुश्किलों से पैदा किये जाते हैं तथा जिनकी रक्षा बड़ी कठनाई से होती है, तथा जिनकी रक्षा करने पर भी जो नष्ट हो जाते हैं, स्थिर नहीं रहते, ऐसे धनादिकों से दुःख ही होता है।

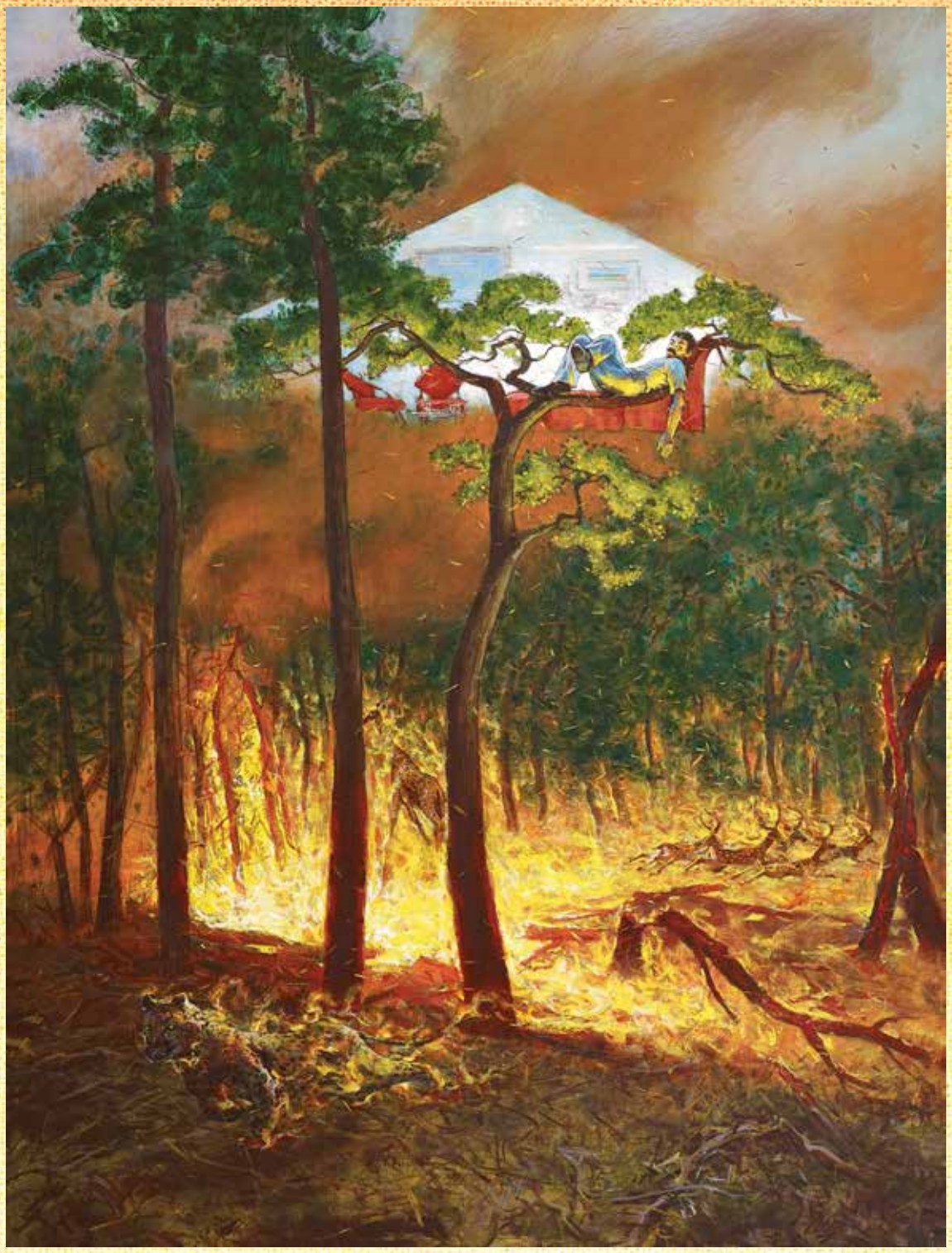

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

पर की विपदा देखता, अपनी देखे नाहिं। जलते पशु जा वन विषै, जड तरूपर ठहराहिं ।।१४।।

अर्थ: एक बार एक व्यक्ति जंगल पहुँचा और एक ऊंचा सा पेड देखकर उस पर चढ गया, जंगल की शान्ति और शीतल वातावरण में उसे नींद आयी और वह सो गया। कुछ देर बाद अचानक उसकी आँख खुलती है और वह देखता है कि पूरे जंगल में भयंकर आग लग चुकी है, सभी पशु-जानवर इधर-उधर भाग रहे हैं, चारो ओर अग्नि की भीष्ण ज्वालायें उठ रही हैं परन्तु उसे लगता है कि ये पशु ही अग्नि में झुलस रहे हैं, मै तो इतने ऊपर पेड पर आराम से बैठा हूँ, मुझे तो इस अग्नि से खतरा नही है। इसीप्रकार इस जीव को अपने चारों ओर रहने वाले जीवों की तो चिंता है, वह उन्हें तो विपदा में देखता है परन्तु स्वयं इन विषय-भोग रूपी विपत्तियों के चक्र में दुखी है वह नही जानता। इस चक्र में ही सुख का भ्रम लेकर इसी में फसा रहता है।

OIL ON CANVAS | 66" x 24"

आयु क्षय धनवृद्धि को, कारण काल प्रमान। चाहत हैं धनवान धन, प्राणनितें अधिकान ।।१५।।

अर्थ: मोहवश यह जीव धन-सम्पदा में इतना मस्त है कि इसे अपना आता हुआ काल दिखाई नही देता। लालसा इतनी हो जाती है कि यदि धन किसी को उधार दे तो सोचता है कि जितना काल बीतता जायेगा, उतनी ही ब्याज की आमदनी बढती जायेगी। वह यह विचार नही करता कि जितना काल बीत रहा है उतनी मेरी आयु भी घट रही है। स्वयं से अनभिज्ञ यह जीव धन बढाने की चाह में प्राण जाने का भय भी नही करता। इसप्रकार के व्यामोह का कारण होने से ऐसे धन को धिक्कार है।

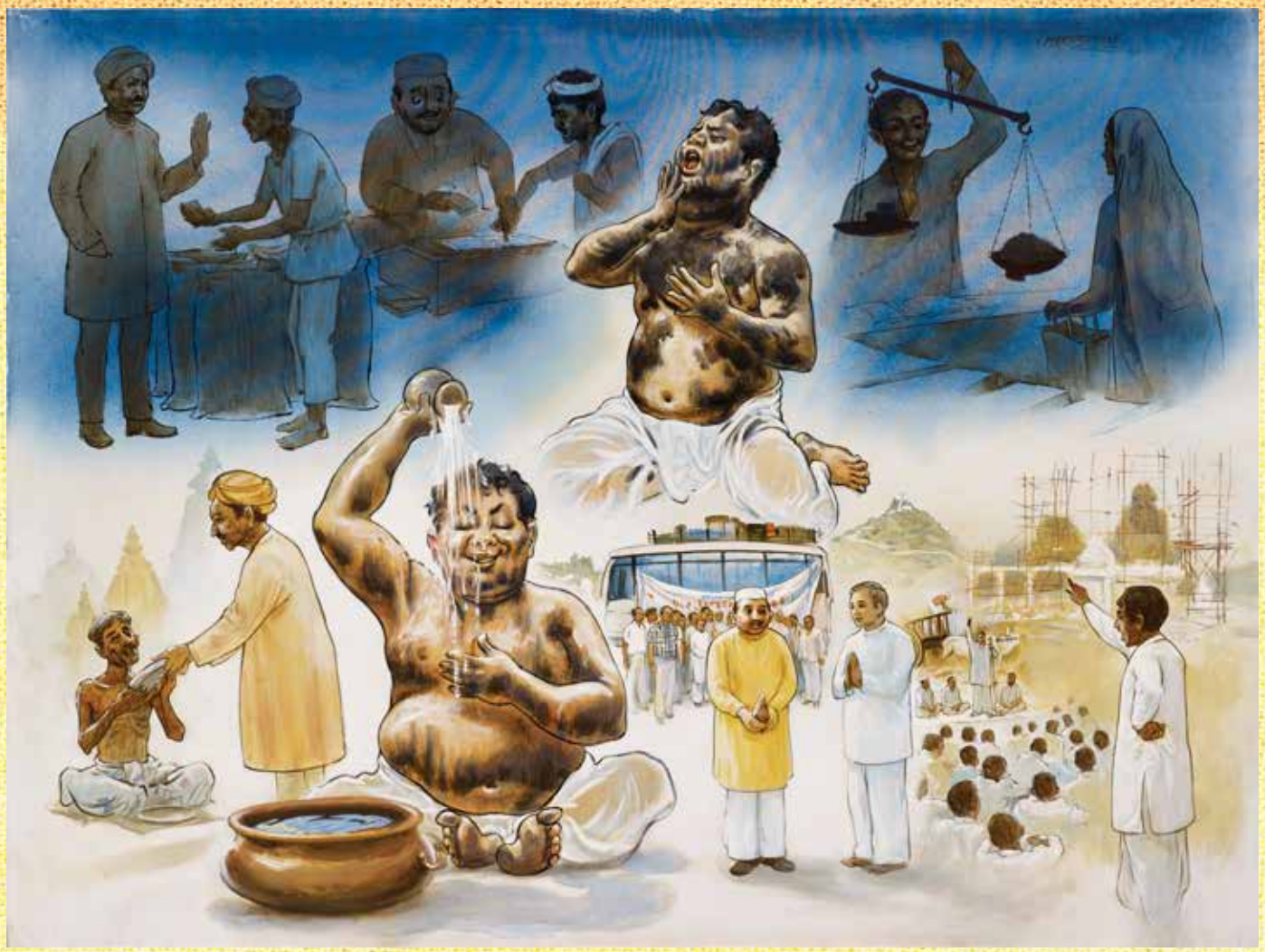

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

पुण्य हेतु दानादि को, निर्धन धन संचेय। स्नान हेतु निज तन कुधी, कीचड से लिम्पेय ।।१६।।

अर्थ: जैसे कोई व्यक्ति अपने शरीर को स्नान कर लूँगा, इस विचार से कीचड अथवा मल से लपेटता है, तो जगत में वह मूर्ख ही कहा जायेगा। उसी प्रकार कोई जीव पाप के द्वारा पहले धन कमा लिया जाये; बाद में दानादि धर्म क्रिया द्वारा पुण्य का संचय करके उस पाप को नष्ट कर डालूँगा; ऐसा विचार करके नौकरी-खेती-व्यापार इत्यादि कार्यों में संलग्न हो जाये तो वह भी अज्ञानी ही है। क्योंकि धनादिक का उपार्जन किसी भी जीव को, किसी भी काल में शुद्ध वृत्ति से हो ही नहीं सकता।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

भोगार्जन दुःखद महा, भोजन तृष्णा बाढ। अंत त्यजत् गुरु कष्ट हो, को बुध भोगत गाढ ।।१७।।

अर्थ: जिन विषय-भोगों की चाह में यह जीव भ्रमित होकर असहनीय कष्ट उठाता है उनकी वास्तविकता अति भयावह है। देह, इन्द्रिय और मन को क्लेश के कारणरूप ये भोग अस्थायी व महाकष्टदायी हैं। जब तक प्राप्त नही होते तब तक प्राप्ति की इच्छा रूप संताप के कारण हैं; जब प्राप्त हो जाते हैं तब अन्य भोगों की अतृप्ति के कारण हैं; और अन्त समय में जब छूटने का अवसर आता है तो छोडने रूप आकुलता के कारण है। अर्थात इन भोगों का आदि-मध्य-अन्त तीनों ही महादुखदायी है। अतः ऐसे भोगों को कौन बुद्धिमान चाहेगा?

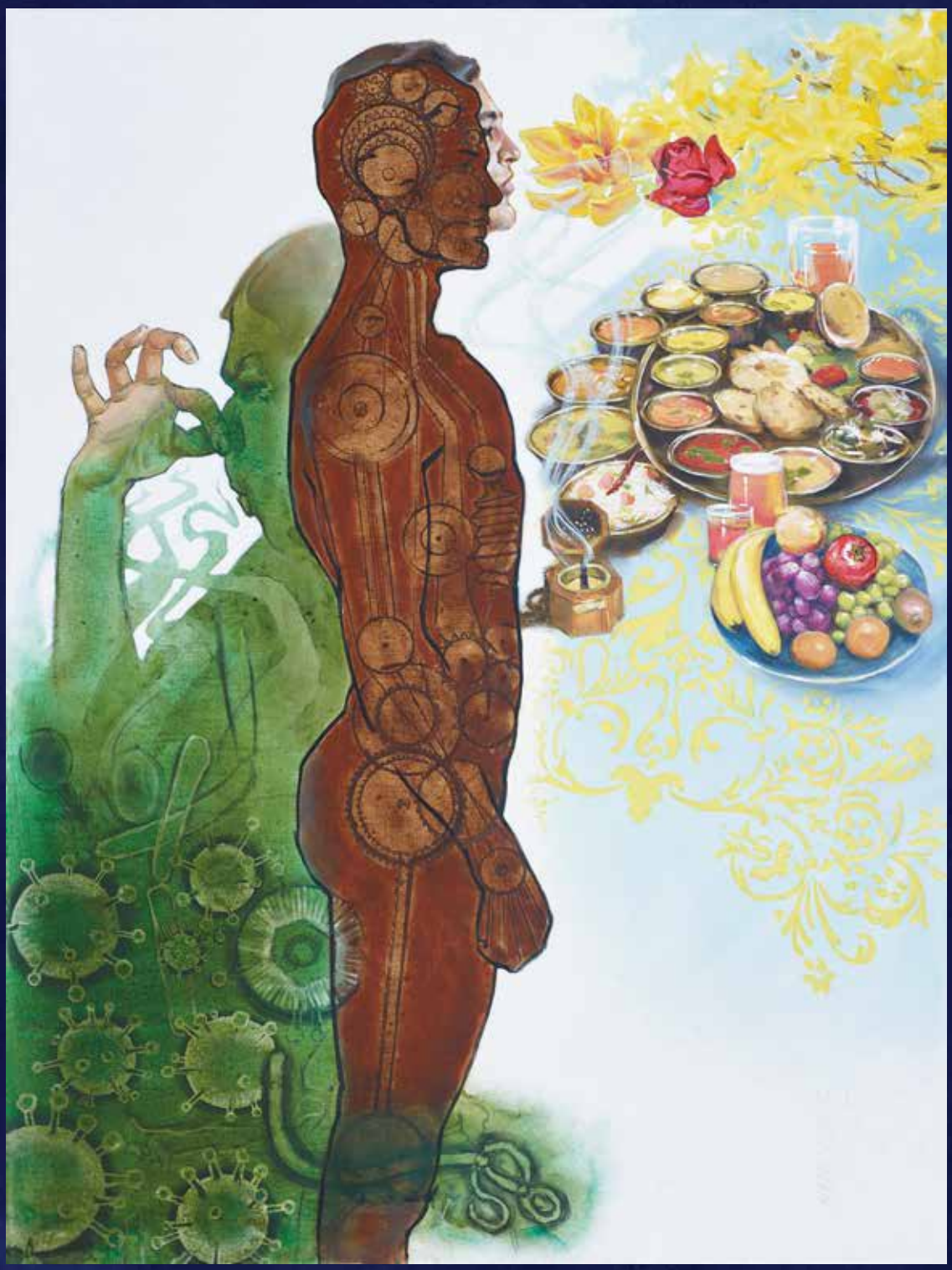

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

शुचि पदार्थ भी संग ते, महा अशुचि हो जाँय। विघ्न करण नित काय हित, भोगेच्छा विफलाय ।।१८।।

अर्थ: जिस शरीर के साथ संबंध करके पवित्र से पवित्र वस्तु भी, शुद्ध से शुद्ध भोजन व रमणीक वस्त्रादिक भी मलिन व अशुचि हो जाते हैं तो विचारिये! ये शरीर पवित्र कैसे हो सकता है? वास्तव में जिस शरीर के प्रति ये जीव निरन्तर आसक्त रहता है, उसका स्वरूप ही अत्यंत घृणायुक्त है। यह शरीर मल-मूत्र का भण्डार है, इसके प्रत्येक रोम से मात्र अशुद्ध पदार्थ ही निकलते हैं तब उसको शुद्ध पदार्थों से पवित्र बनाने की आकांक्षा करना व्यर्थ ही है। इसको पवित्र करने के एक उपाय करने पर तत्काल दूसरे अपाय उठ खडे होते है। अतः इसका पोषण करना जीव की सबसे बडी भूल है।

OIL ON CANVAS | 60" x 48"

आतम हित जो करत है, सो तनको अपकार। जो तनका हित करत है, सो जियको अपकार ।।१९।।

अर्थ: समय, समय ही जीव का सबसे बडा मित्र है और सबसे बडा शत्रु भी। समय रहते भेदविज्ञान करना ही बुद्धिमत्ता है और उसे व्यर्थ गवाना ही मूर्खता। इस अल्प जीवन में जो अनशनादिक जीव के पापों का नाश करने वाले होने के कारण जीव को उपकारी हैं वही अनुष्ठान शरीर के लिये अपकारी व कष्टदायी है। और जो धनादिक व भोजनादिक शरीर को उपकारक है, वही पापपूर्वक होने से दुर्गति के कारण हैं व जीव को अहितकारी है, उसको वास्तविक उपकारक तो धर्म ही है। इसलिये यह समझ रखनी चाहिये कि धन नही अपितु धर्म की साधना ही योग्य है।

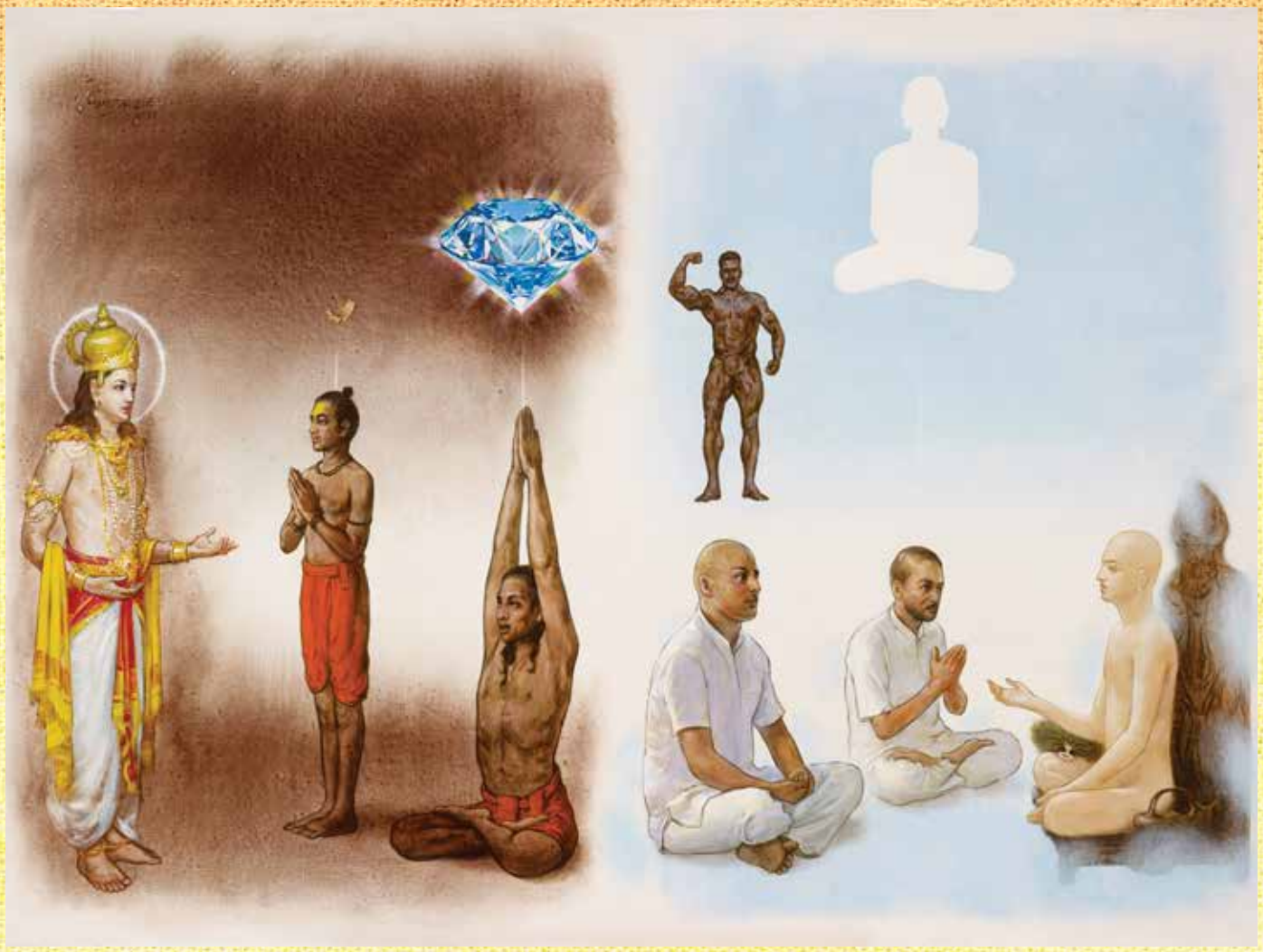

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

इत चिंतामणि है महत्, उत खल टूक असार। ध्यान उभय यदि देत बुध, किसको मानत सार ।।२०।।

अर्थ: एक ओर तो देवाधिष्ठित अर्थ को देने वाला दिव्य चिन्तामणि रत्न और दूसरी ओर बुरा व छोटा सा खली का टुकडा, यदि ये दोनो ही ध्यान के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं तो कहो विवेकी पुरुष दोनों में से किसका आदर करेंगे? इसलिये आर्त व रौद्र ध्यान रूप इस लोक संबंधी फल की अभिलाषा को छोडकर धर्म व शुक्लध्यान वाले परलोक संबंधी उत्कृष्ट फल की प्राप्ति के लिये ही आत्मा का ध्यान करना चाहिये।

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

निज अनुभव से प्रगट है, नित्य शरीर–प्रमान। लोकालोक निहारता, आतम अति सुखवान ।।२१।।

अर्थ: आत्मा कोई काल्पनिक वस्तु नही, वह अनुभव से जानने में आने वाला तत्व है। वह स्वयं लोक–अलोक समस्त द्रव्य–गुण–पर्याय का ज्ञायक है, पर से निरपेक्ष अनन्त सुख स्वभावी है, अमूर्तिक होते हुए भी देहप्रमाण है, नित्य तथा योगिजनों द्वारा स्वानुभव में स्पष्ट है। अब एक बार पर से भिन्न निज स्वभाव का आस्वादन करके तो देख!

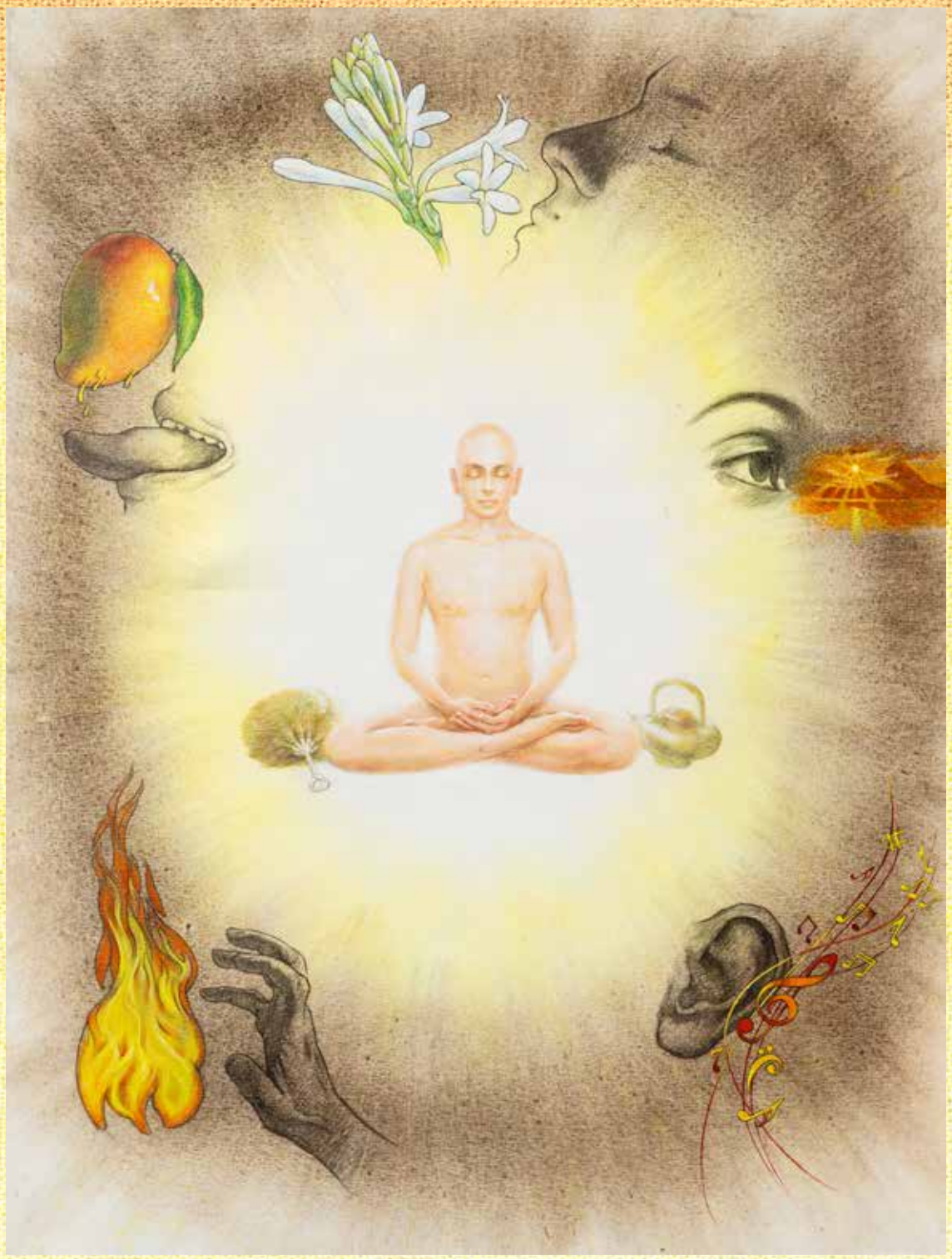

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

मन को कर एकाग्र, सब इन्द्रिय–विषय मिटाय। आतमज्ञानी आत्म में, निजको निजसे ध्याय।।२२।।

अर्थ: वास्तव में कोई इन्द्रियगत विषय आत्मा को विचलित नही करता, कर सकता। विषय नही अपितु उनमें पडी सुखबुद्धि दुखदायी है। विषय भोगों में भटकने वाला मन ही आत्मज्ञानी को आत्मज्ञान में बाधा है। यदि तू उस मन को ही एकाग्र कर लेगा तो इन्द्रिय विषय स्वयमेव मिट जायेंगे और आत्मज्ञान भी सहज प्राप्त हो जायेगा। अतः हे जीव! अपने में ही स्थित आत्मा को अपने द्वारा जान।

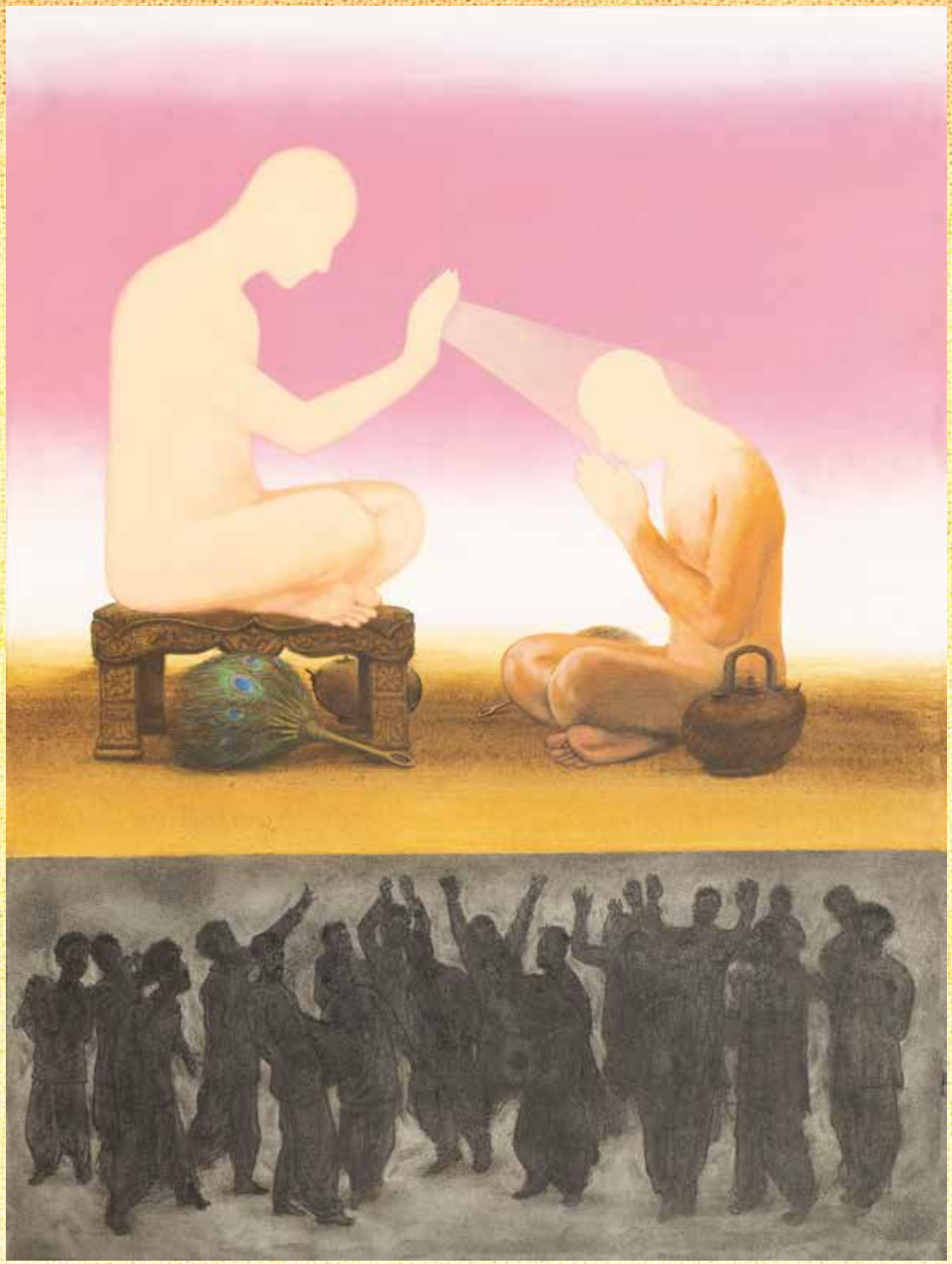

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

अज्ञ–भक्ति अज्ञान को, ज्ञान–भक्ति दे ज्ञान। लोकोक्ति जो जो धरे, करे सो ताको दान ।।२३।।

अर्थ: हे भव्य! जीव का सबसे बडा दोष उसका मोह जनित अज्ञान ही है। अज्ञानता के दो अर्थ हैं; एक तो ज्ञानरहित देह में आत्मबुद्धि रूप अज्ञान और दूसरा मोह भ्रान्ति सहित गुरुओं की सेवा रूप अज्ञान। यह बात प्रसिद्ध है कि जिसके पास जो कुछ होता है वह उसी को देता है, जो उसके पास है नही वह दूसरे को कहाँ से देगा? अतः हे भद्र! ज्ञान एवं ज्ञानी की ही उपासना करना योग्य है। ज्ञान होने का फल तो स्वभाव की निर्मलता है, यदि वह प्राप्त ना हो तो ज्ञान पाकर भी जीव अज्ञानी ही है।

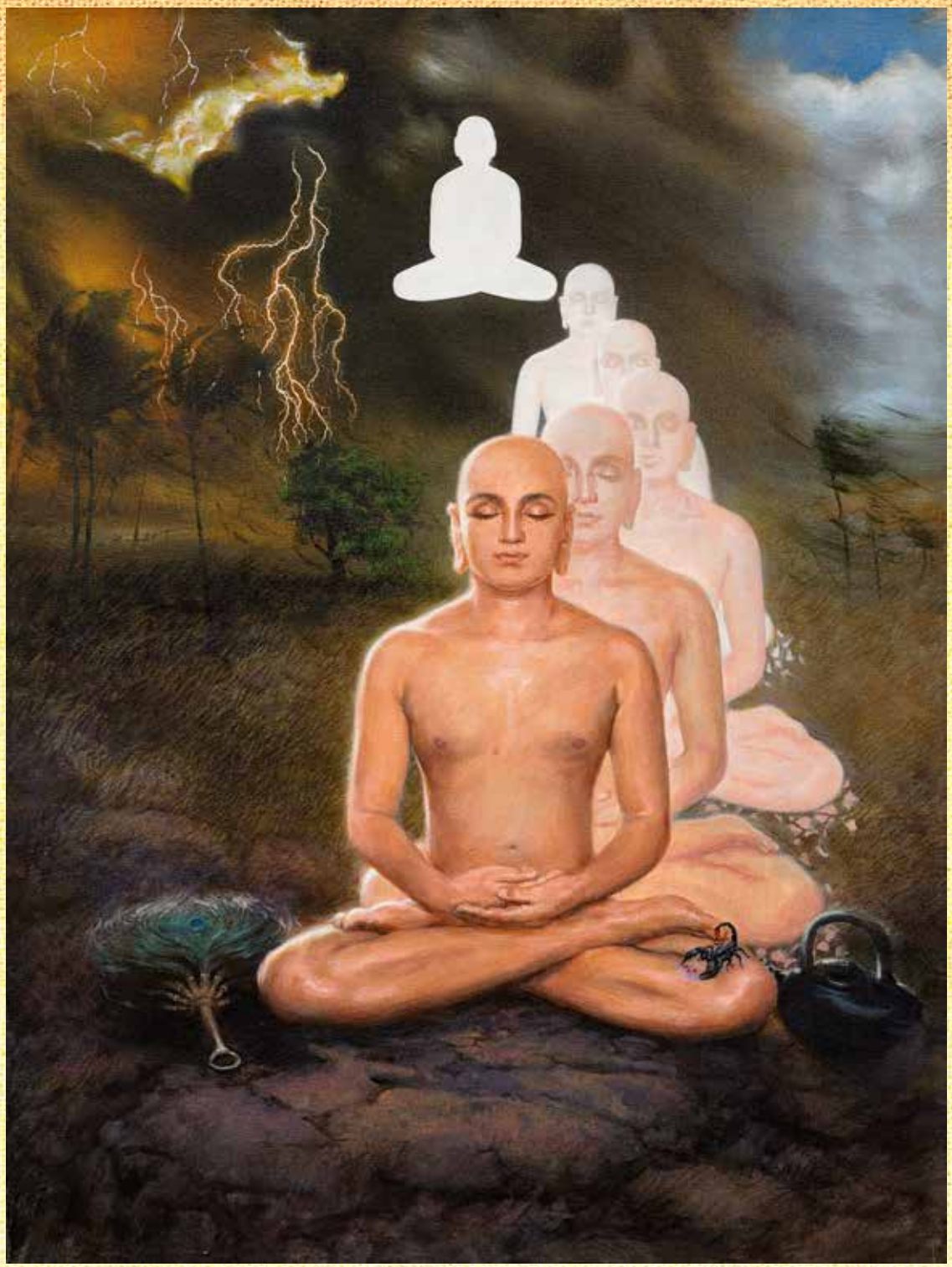

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

परिषहादि अनुभव बिना, आतम–ध्यान प्रताप। शीघ्र ससंवर निर्जरा, होत कर्म की आप ।।२४।।

अर्थ: मुनिराज आत्मध्यान में लीन हैं, वे द्रव्य–भाव–नोकर्म से भिन्न अपने शुद्धात्म स्वरूप का रसास्वादन कर रहे हैं। जब जीव आत्मा में आत्मा के ही चिन्तवन रूप ध्यान में मग्न होता है तो उसका लक्ष्य एकमात्र अपने ज्ञायक स्वभाव पर केन्द्रित होता है। आत्मा व शरीर के भेदज्ञान से उत्पन्न आनन्द से परिपूर्ण मुनिराज इस अवस्था में आने वाले भयंकर उपसर्गों व घोर परिषहों को भोगते हुए भी खेद–खिन्न नही होते। वे तो समस्त आधि–व्याधि–उपाधियों से रहित निरुपाधिक आत्मा में ही मग्न हैं और इस ध्यान से कर्मों के आगमन को रोकने वाली उत्कृष्ट कर्म–निर्जरा होती है।

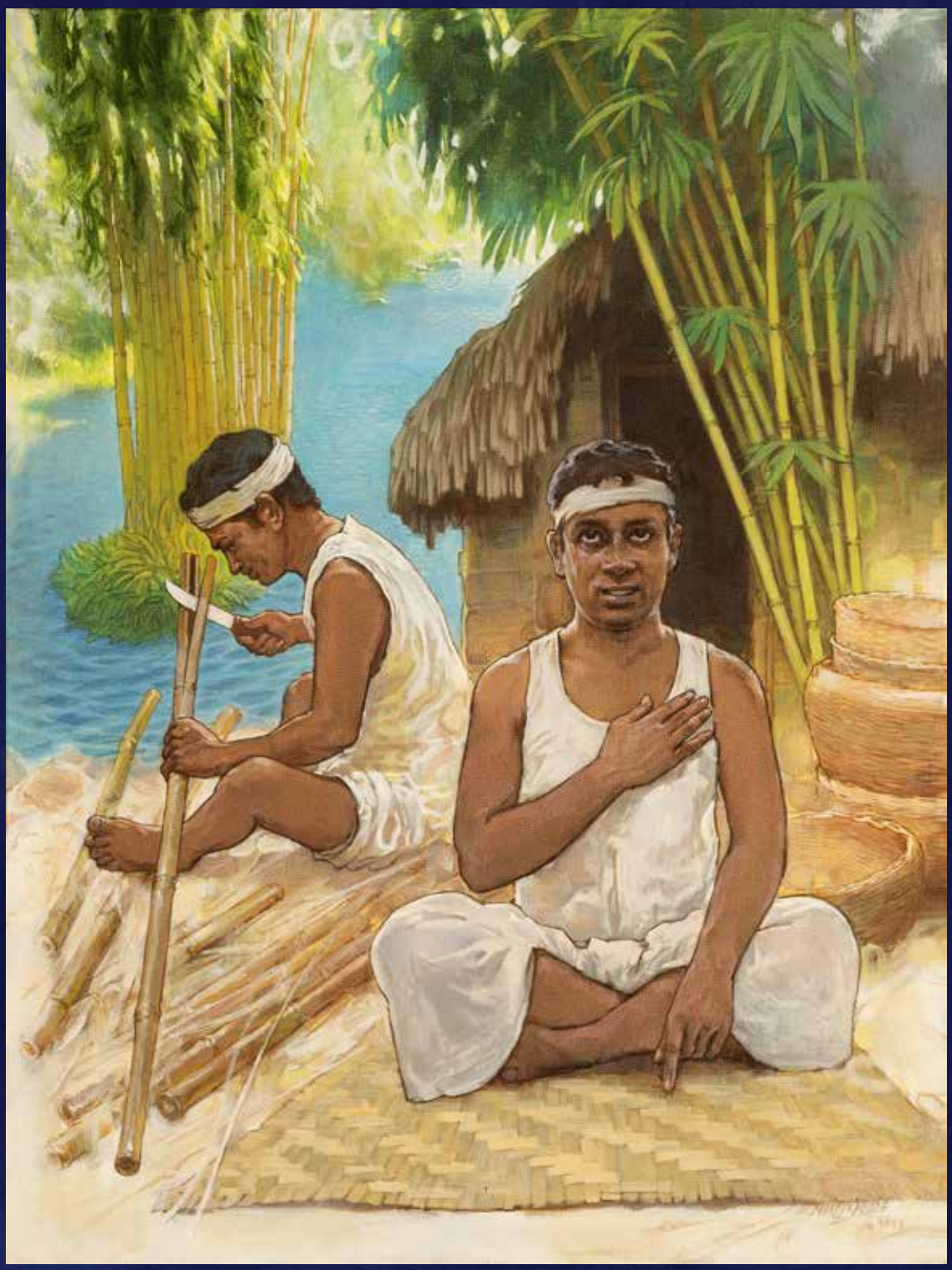

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

'कट का मैं कर्तार हूँ' यह द्विष्ठ सम्बन्ध। आप हि ध्याता ध्येय जहँ, कैसे भिन्न सम्बन्ध ।।२५।।

अर्थ: हे जीव! बाँस की खपच्चियों और जल से चटाई बनाने वाला भी यही कहता है कि 'मैं चटाई को बनाने वाला हूँ।' यहाँ बनाने वाला 'मैं' जुदा हूँ और बनने वाली 'चटाई' जुदी है। कर्ता-कर्म का व्यवहार संबंध तो दो के मध्य ही होगा लेकिन यदि कोई संबंध के उपचार को ना समझकर उसे ही परमार्थ मान ले तो वह सदा आकुलित रहेगा। उसीप्रकार ध्यान अवस्था में तो आत्मा ही ध्याता, आत्मा ही ध्यान और आत्मा ही ध्येय हो जाता है, वहाँ कर्मादिक का कोई संबंध नही, तब छूटना किसका? यही परमार्थ है।

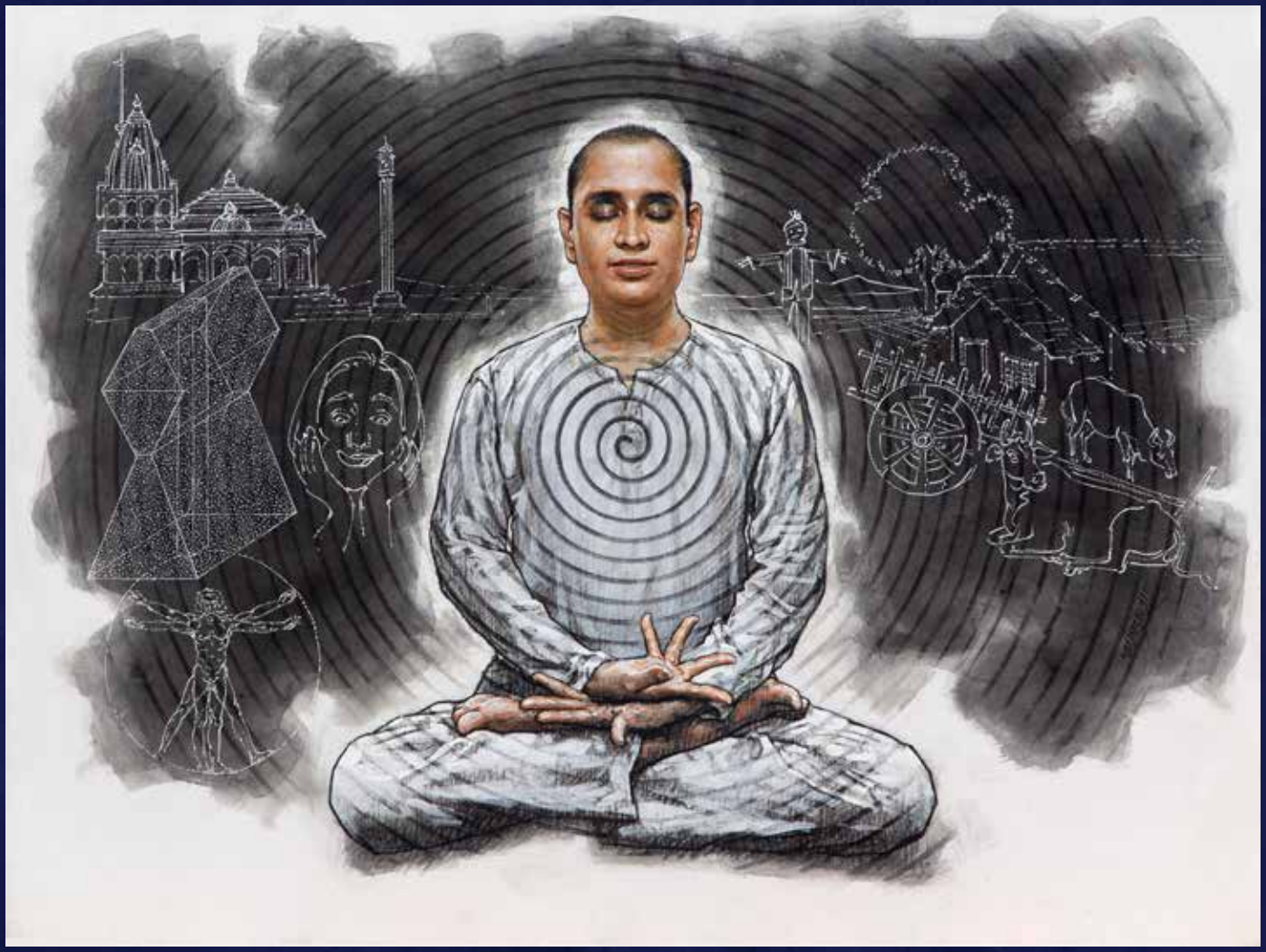

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

मोही बाँधत कर्म को, निर्मोही छुट जाय। यातें गाढ प्रयत्न से, निर्ममता उपजाय ।।२६।।

अर्थ: हे अबंध स्वभावी आत्मन्! बंधन से प्रत्येक प्राणी दुखी है और मुक्त तो होना चाहता है परन्तु उपाय के अभिज्ञान बिना कैसे हो? परमार्थ से तो जीव को; ना ही कर्मस्कंधों से भरा यह तीन लोक, ना ही हलनचलनादि रूप क्रिया, ना इन्द्रियाँ, ना विषय-भोग और ना ही कोई चेतन-अचेतन पदार्थ बंधन के कारण हैं; जीव बंधता है तो मात्र अपने मोह रूप अज्ञान से। 'ये मेरे हैं, मैं इसका हूँ', इन विकल्पों के चक्रव्यूह में ये जीव अपनी वास्तविक सम्पत्ति भूलकर स्व से भिन्न द्रव्यों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की चेष्टा करता है। इसलिये हर प्रकार से निर्ममता का विचार करना चाहिये।

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

मैं इक निर्मम शुद्ध हूँ, ज्ञानी योगीगम्य। कर्मोदय से भाव सब, मोतें पूर्ण अगम्य ।।२७।।

अर्थ: जैसे मोती में पिरोया हुआ डोरा धारावाही है उसीप्रकार प्रत्येक अवस्था में मैं सामान्य रूप से धारावाही हूँ अतः हे पुरुषार्थवन्त जीव! यह निर्धारण कर! मैं एक हूँ, निर्मम अर्थात मोह रहित शुद्धात्मा हूँ, कर्मादिक से भिन्न अनन्त सर्वज्ञ परमात्माओं के प्रत्यक्ष ज्ञान में व श्रुतकेवलियों द्वारा शुद्धोपयोग मात्र रूप से जानने में आने वाला चिन्मय स्वभाव जीव तत्व हूँ। ये देहादिक जितने भी संयोगजन्य पदार्थ हैं, वे मेरे अस्तित्व में रंचमात्र भी प्रवेश नही करते, वे मुझसे सर्वथा (द्रव्य से, गुण से, पर्याय से) भिन्न है।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

प्राणी जा संयोगतें, दुःख समूह लहात। यातें मन वच काय युत, हूँ तो सर्व तजात ।।२८।।

अर्थ: संसार में यह जीव देहादिक के संयोग के कारण भी घोर दुःखों को भोगता है। जिसका कारण मन-वचन-काया की प्रवृत्ति है। इसलिये निराकुलता के लक्ष्यी जीव को इन संबंधों से मुक्त होने हेतु मन-वचन-काय से इन संयोगों का त्याग करना अनिवार्य है। आत्मा मन-वचन-काय से भिन्न है इसप्रकार के अभ्यास से सुख रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो उस उपाय को जान लेता है वह तिर जाता है। मोक्षगामी के अंतरंग में तो मन-वचन-काय से भिन्न चैतन्य तत्व ही भासित होता है।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

मरण रोग मोमैं नहीं, तातें सदा निशंक। बाल तरूण नहिं वृद्ध हूँ, ये सब पुद्गल अंक ।।२९।।

अर्थ: संसार में सबसे बडा एवं अनायास भय मृत्यु का ही है। क्योंकि मृत्यु तो कर्म जनित सत्य है जिसे टालना किसी के हाथ में नही। परन्तु ज्ञानी जन मृत्यु के परमार्थ को जानकर भी आनन्दित होते हैं, परमार्थ से मेरी मृत्यु संभव नही। जब मेरा मरण नही तब मरण के कारणभूत काले नाग आदि से मुझे भय कैसा? मुझे व्याधि नही तब पीडा कैसी? ना मैं बालक, न वृद्ध और न ही युवा, ये सर्व अवस्थायें तो पुद्गल की हैं; मैं तो इनसे भिन्न अजर-अमर तत्व हूँ।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

सब पुद्गलको मोह से, भोग भोगकर त्याग। मैं ज्ञानी करता नहीं, उस उच्छिष्ट में राग ।।३०।।

अर्थ: अनादि काल से इस भव चक्र में फंसा यह जीव, अनन्त बार - अनन्त वस्तुओं को बार-बार भोगता आया है। इस विश्व के प्रत्येक परमाणु को भोगने के बाद भी मोह के कारण इसकी आसक्ति नही छूटती। भोगों को नीरस कर-करके छोडा लेकिन उनके प्रति मोह नही छूटा। वास्तव में स्वयं भोगकर छोडे झूठन, गंध, मालादिक में जैसे लोगों को फिर भोगने की इच्छा नही होती उसी तरह इस समय तत्वज्ञान से युक्त हुए मुझ ज्ञानी जीव को उन छिनकी हुई रेंट (नाक) समान पुद्गलों में क्या अभिलाषा होगी?

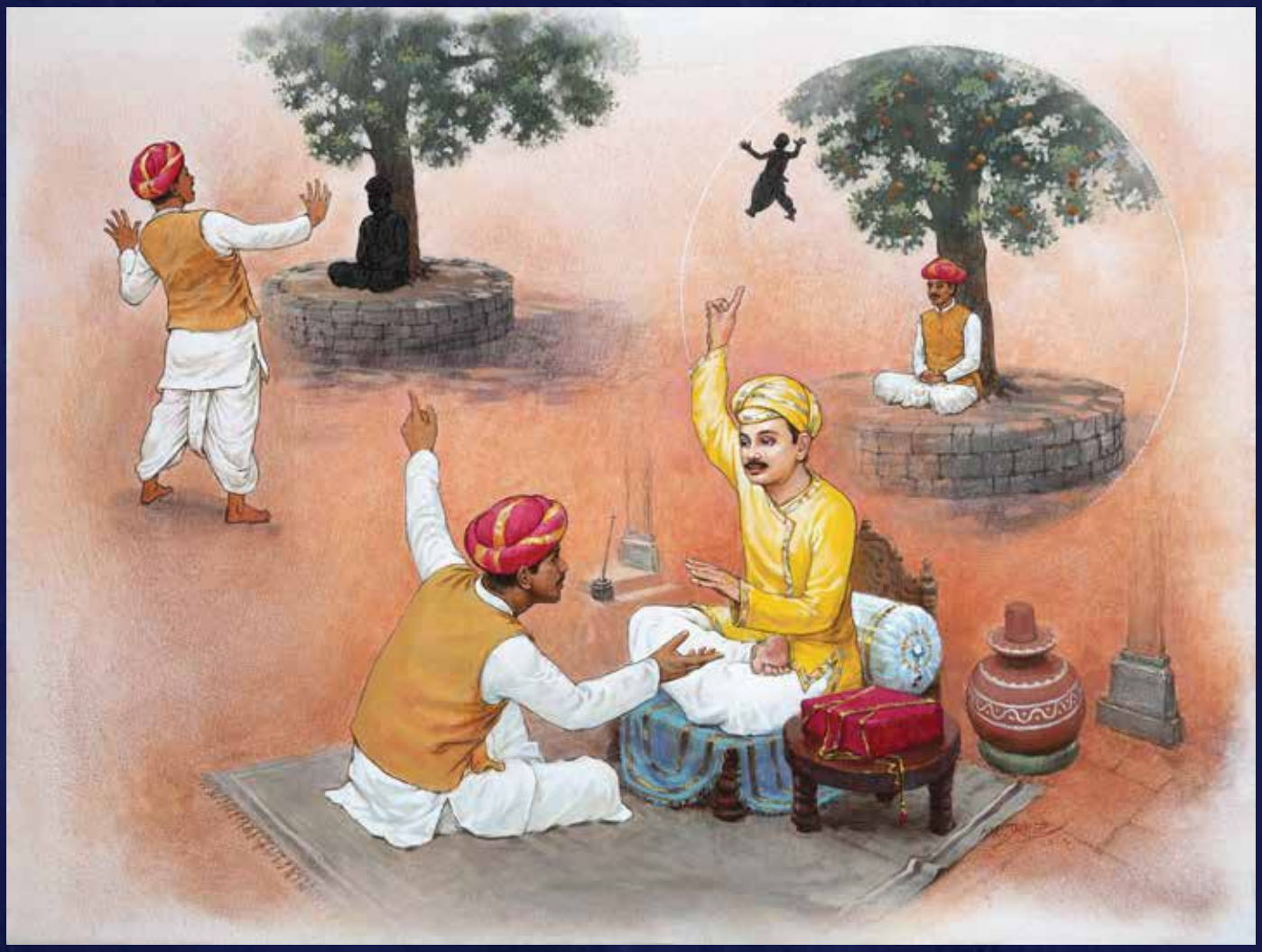

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

कर्म कर्महितकार है, जीव जीवहितकार। निज प्रभाव बल देखकर, को न स्वार्थ करतार ।।३१।।

अर्थ: जीव और कर्मों का अनादिकालीन बैर है, कभी जीव बलवान हो जाता है तो कभी कर्म बलवान हो जाते हैं। जीव के द्वारा किये गये परिणाम जो कि निमित्त मात्र है, उसे प्राप्त करके जीव से विभिन्न पुद्गल, स्वयं कर्मरूप परिणम जाते हैं। अब जीव तो जीव का ही हित चाहता है और कर्म, कर्म का; सो ठीक ही है। पूर्व में संचित कर्म, नवीन द्रव्यकर्मों की सन्तति में कारण है और भविष्य में वे ही आगे नवीन कर्मों की उत्पत्ति के कारण बनेंगे। यदि समय रहते जीव नही चेतता तो ये सन्तति कभी अन्त नही होगी, यह दुख कभी समाप्त नही होगा।

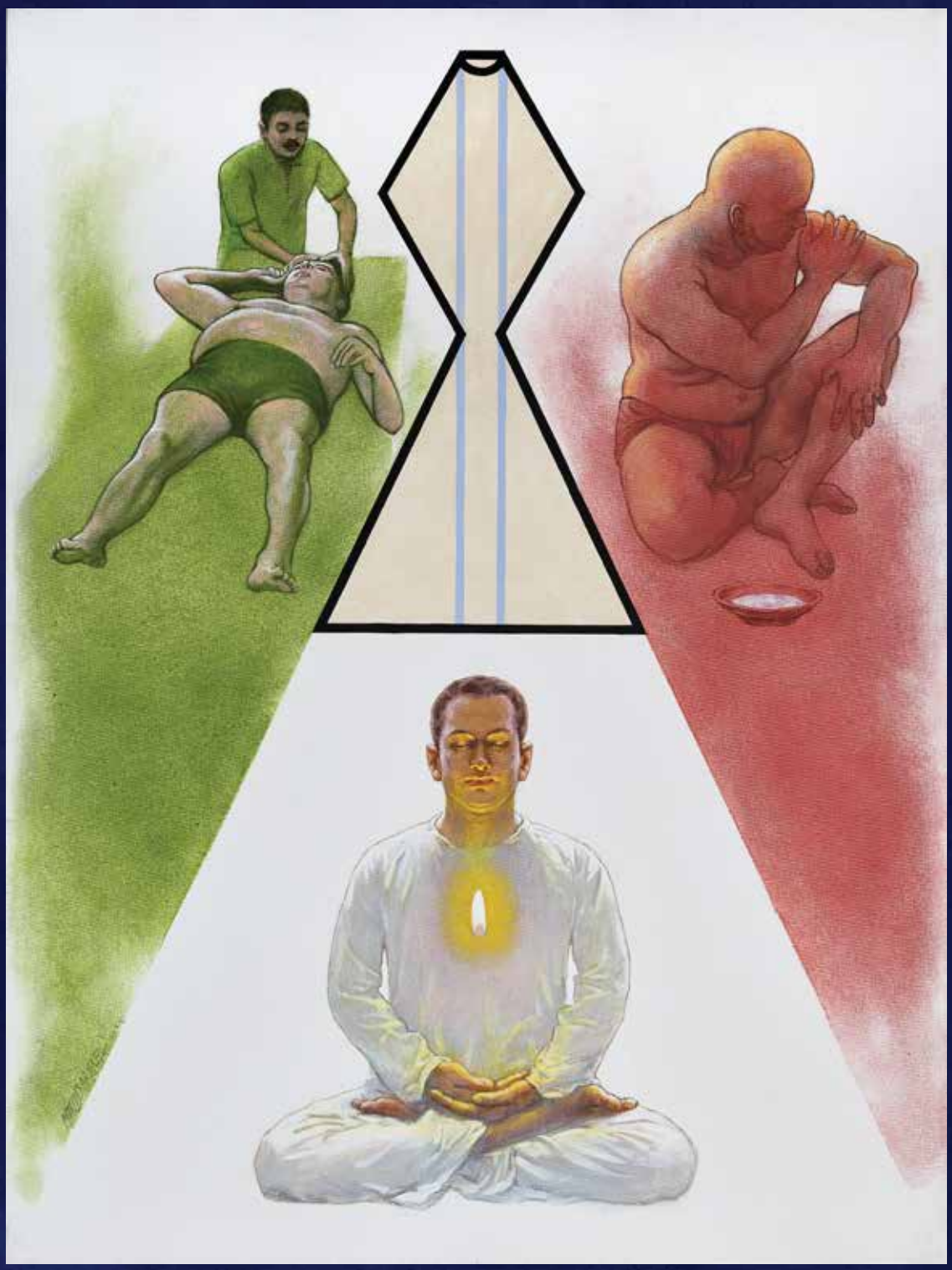

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

प्रगट अन्य देहादिका, मूढ करत उपकार। सज्जनवत् या भूल को, तज कर निज उपकार ।।३२।।

अर्थ: उपकार की वास्तविक परिभाषा क्या? मुक्ति का उपकार ही पारमार्थिक उपकार है। यह मूर्ख जीव आयुपर्यंत शरीर को स्व जानकर उसके ही उपकार में सारा जीवन व्यर्थ गवां देता है। प्रत्यक्ष में भिन्न वस्तु का उपकार करता है परन्तु अनुभव से जानने में आने वाले निजात्मा का उपकार करने का विकल्प भी नही। वास्तविक वस्तुस्थिति को जानने वाले ज्ञानीजन इन्द्रियों के आधीन होकर शरीर के नही आत्मा के उपकार में तत्पर रहते हैं। अतः पर को पर और स्व को स्व जानकर आत्मोपकार करने में तत्पर हो जाओ।

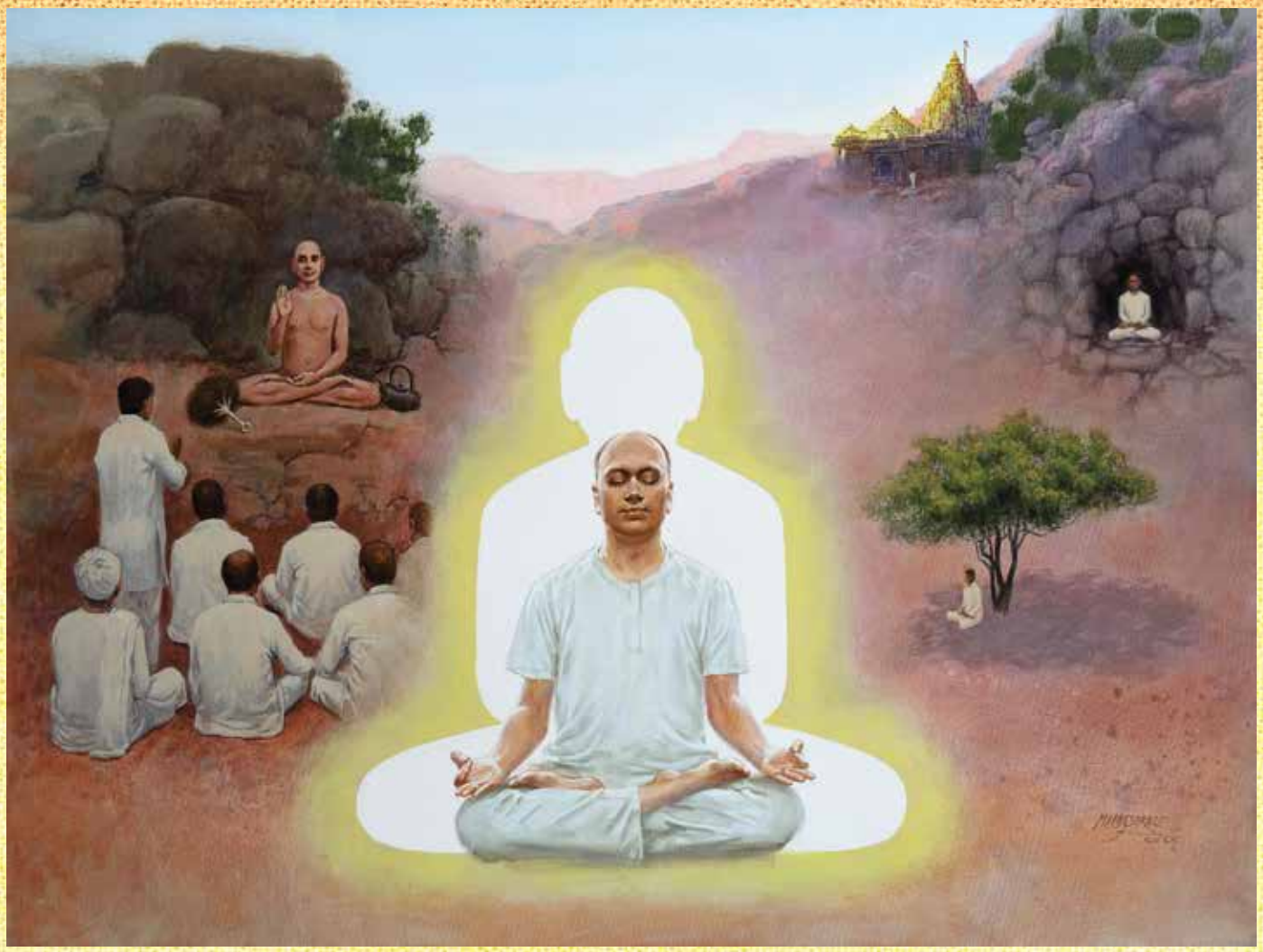

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

गुरू उपदेश अभ्यास से, निज अनुभव से भेद। निज–पर को जो अनुभवे, लहै स्वसुख बेखेद ।।३३।।

अर्थ: अभ्यास, अभ्यास, मात्र अभ्यास। जो भव्य जीव सच्चे वीतरागी गुरु अथवा स्व–आत्मा के उपदेश के अभ्यास से स्व और पर में यथार्थ भेद जानते हैं; साथ ही उस भेद के वास्तविक ज्ञान के बाद स्व में लीन होने का पुरुषार्थ करते हैं; वे जीव ही कर्मों से भिन्न मोक्ष संबंधी सुख का अनुभव करते हैं।

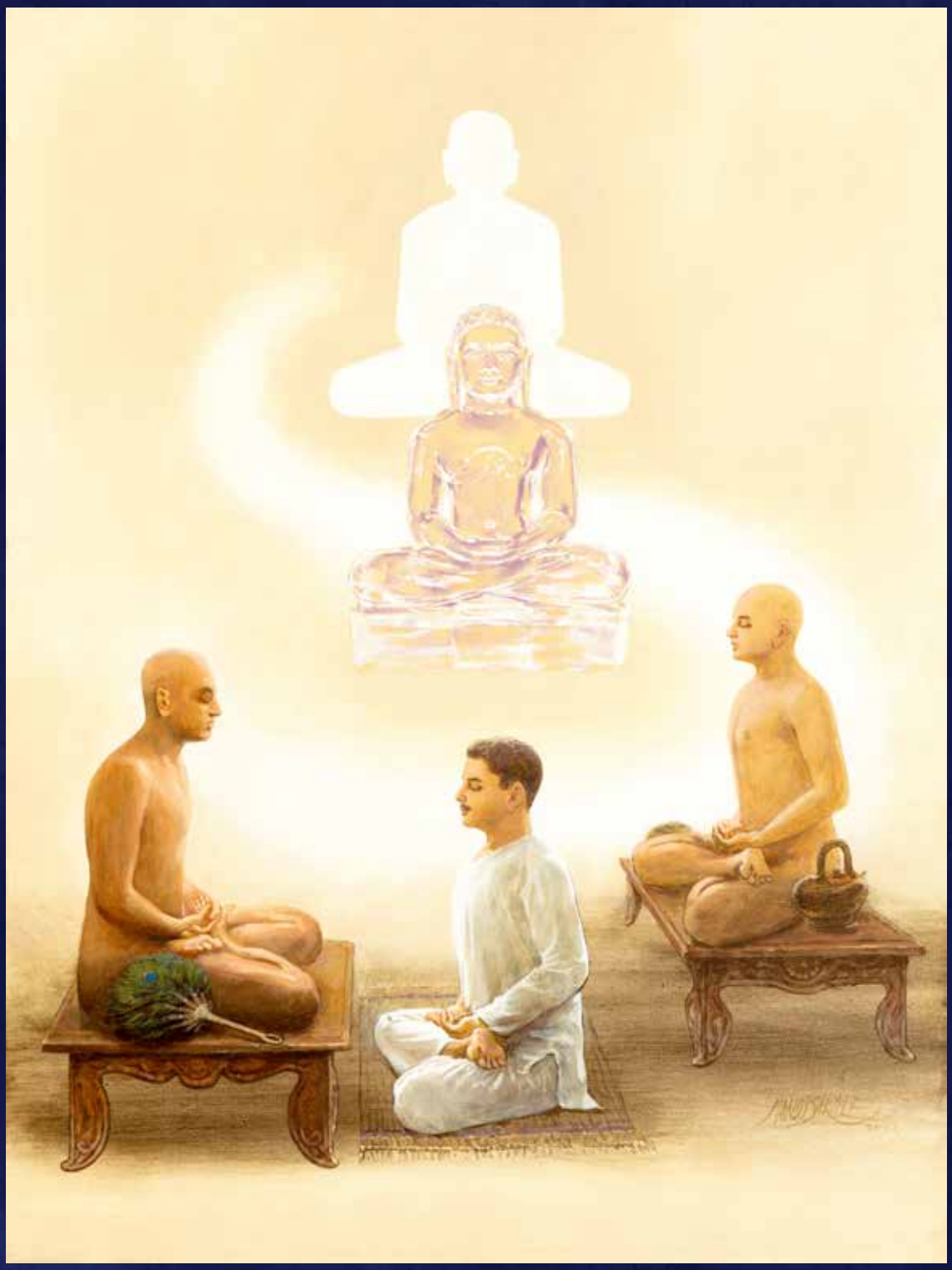

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

आपहि निज हित चाहता, आपहि ज्ञाता होय। आपहि निज हित प्रेरता, निज गुरू आपहि होय ।।३४।।

अर्थ: वास्तव में हर वो जीव जो अपना हित चाहते हैं और दूसरे भी हित के अधिकारी है इस भावना से उस उपाय को दूसरों तक पहुँचाते हैं अर्थात हित के प्रवर्तक होते हैं; वे ही सच्चे गुरु हैं। आश्चर्य वाली बात तो यह है कि समस्या व समाधान स्वयं में ही है, मोक्ष सुख की अभिलाषा करने वाला भी मैं, मोक्ष सुख के उपायों को जताने वाला भी मैं और मोक्ष सुख के उपाय को प्रवर्तन करने वाला भी मैं अतः परमार्थ से तो ये आत्मा ही आत्मा का गुरु है, अन्य कोई नही।

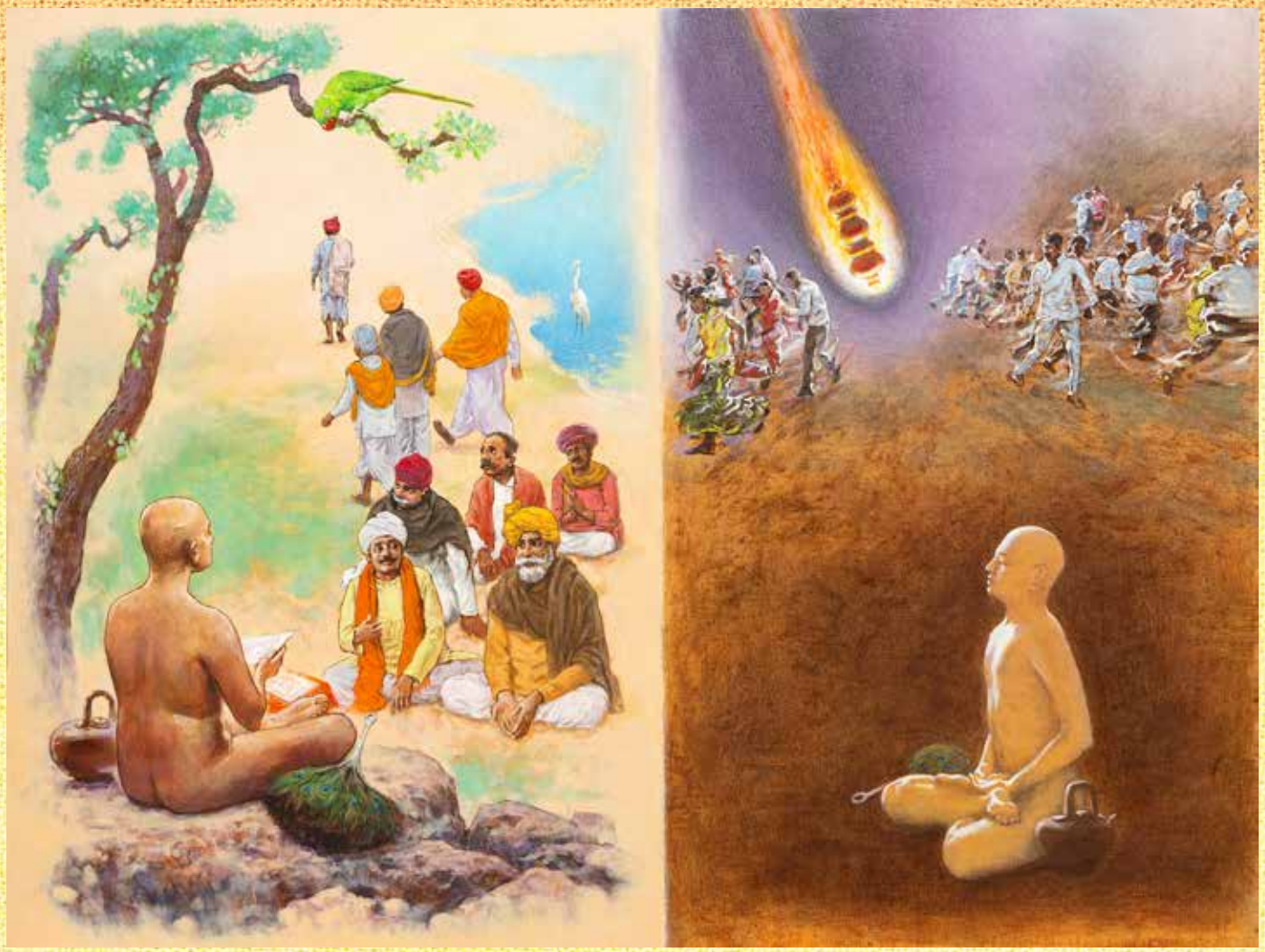

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

मूर्ख न ज्ञानी हो सके, ज्ञानी मूर्ख न होय। निमित्त मात्र पर जान, जिमि गति धर्मतें होय ।।३५।।

अर्थ: तत्वज्ञान की उत्पत्ति के अयोग्य अभव्य जीव लाख प्रयत्न करने पर भी तत्वज्ञान को प्राप्त नही कर सकते और तत्वज्ञान के धारी भव्य जीव अनेक प्रयत्नों के बाद भी अज्ञानता को प्राप्त नही हो सकते। कोई भी प्रयत्न कार्य की उत्पत्ति करने के लिए स्वाभाविक गुण की अपेक्षा किया करता है। सैकडों उपायों से भी बगुला तोते की तरह नहीं पढाया जा सकता है। जिसप्रकार वज्र के गिरने के भय से घबरायी हुई दुनिया मार्ग छोडकर इधर-उधर भागने लगती है, आकुलित हो उठती है परन्तु शान्ति के सागर शुद्धात्मा में निवास करने वाले योगिगण अपने ध्यान से किंचित् भी विचलित नही होते तब ज्ञानरूपी प्रदीप से जिन्होंने मोह रूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव क्या परिषहों के आने पर चलायमान हो जायेंगे? नही!

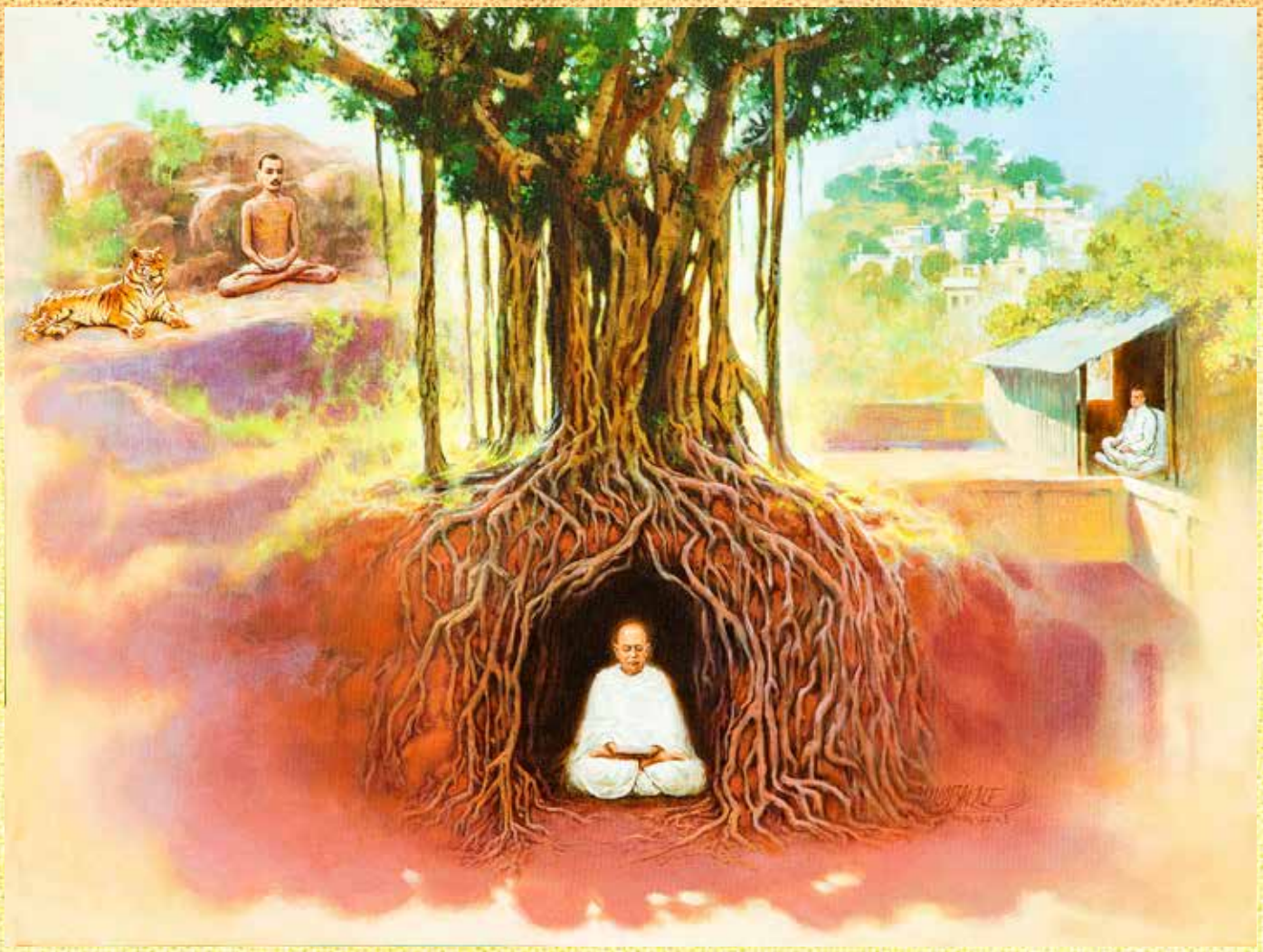

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

क्षोभ रहित एकान्तमें, तत्वज्ञान चित धाय। सावधान हो संयमी, निज स्वरूप को भाय ।।३६।।

अर्थ: जिन्हें संसार का यथार्थ स्वरूप प्रतिभासित हो गया वे क्षुभित नही होते, जिन्होंने हेय-उपादेय तत्वों की सच्ची समझ प्राप्त कर ली है तथा गुरुओं के उपदेश से जिनकी बुद्धि निश्चल हो गयी है तथा जिनके ज्ञान में शुद्धात्मा का अवलोकन हो गया है; ऐसे संयमी ज्ञानी जनों को तो आत्मध्यान के लिये एकान्त स्थान जैसे शून्यग्रह, वृक्षों की कोटर व पर्वतों की गुफायें ही प्रिय है।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

जस जस आतम तत्वमें, अनुभव आता जाय। तस तस विषय सुलभ्य भी, ताको नहीं सुहाय ।।३७।।

अर्थ: जिन योगीजनों के ज्ञान में यथार्थ, निर्मल एवं परम पवित्र आत्मस्वरूप झलकता हो; उन्हें विषय भोगों की क्या कामना। देखो! जब मछली के अंगों को जमीन ही जला देने में समर्थ है तब अग्नि के अंगारो का तो कहना ही क्या? वे तो जला ही देंगे। उसीप्रकार जिस योगी को जैसे-जैसे आत्मा का विषय स्पष्ट होता जाता है वैसे-वैसे बिना किसी प्रयत्न के सहज प्राप्त होने वाले इन्द्रिय विषय भोग भी उन्हें प्रभावित नहीं कर पाते। यह आत्मस्वरूप का ही अतिशय समझो।

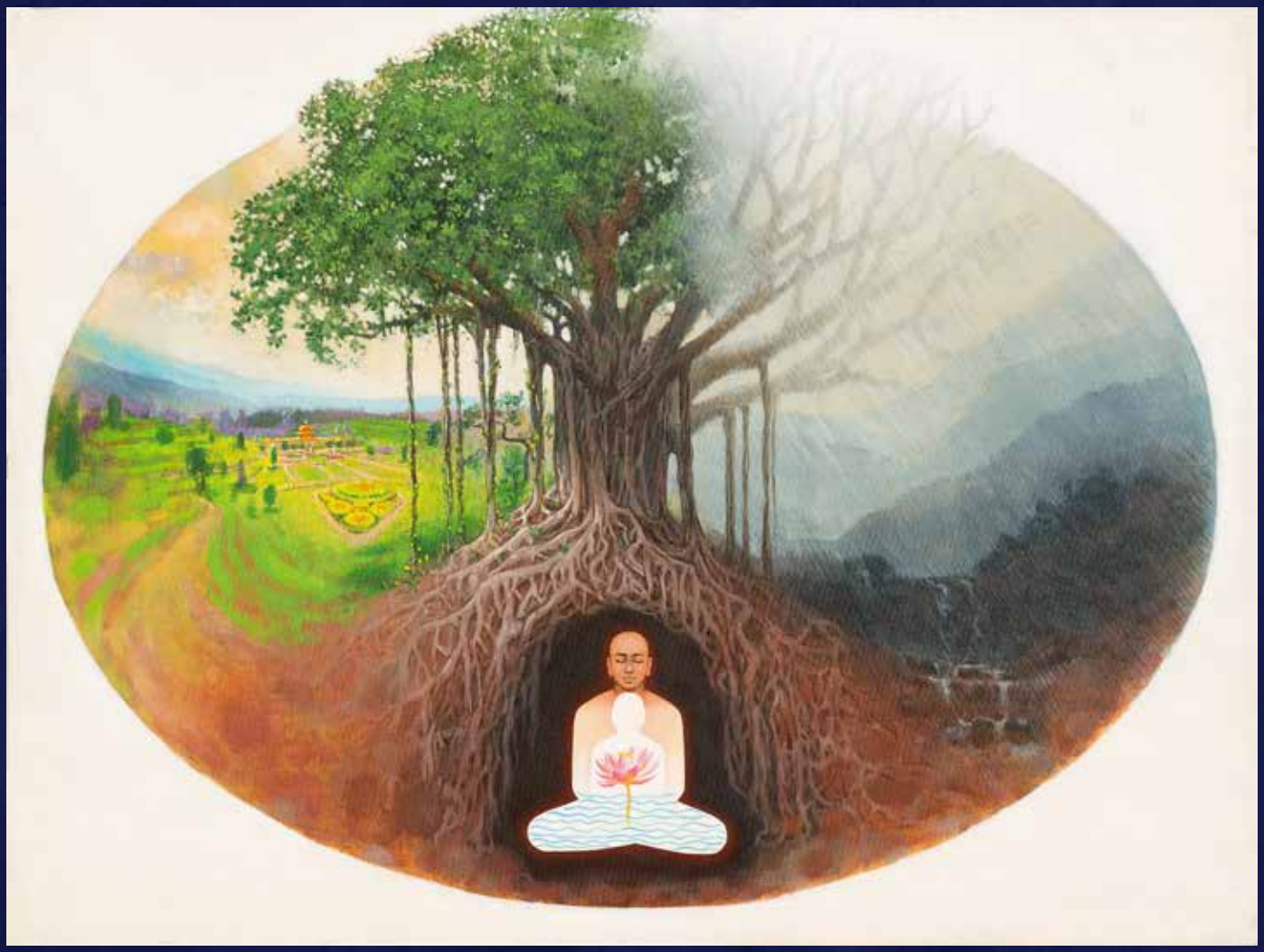

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

जस जस विषय सुलभ्य भी, ताको नहीं सुहाय। तस तस आतम तत्व में, अनुभव बढता जाय ।।३८।।

अर्थ: सत्य ही है, जैसे-जैसे विषय भोगों के प्रति रूचि घटती जाती है, वैसे-वैसे योगी की आत्मानुभवन की परिणति वृद्धि को प्राप्त होती है। अतः हे वत्स! व्यर्थ के कोलाहल से क्या लाभ? बस एक बार एकांत में निवास करके छह मास निजात्मा का अवलोकन तो कर। फिर देख! आत्मा रूपी सरोवर में जड से भिन्न शुद्धात्मा की उपलब्धि कैसे नहीं होगी? अर्थात अवश्य होगी।

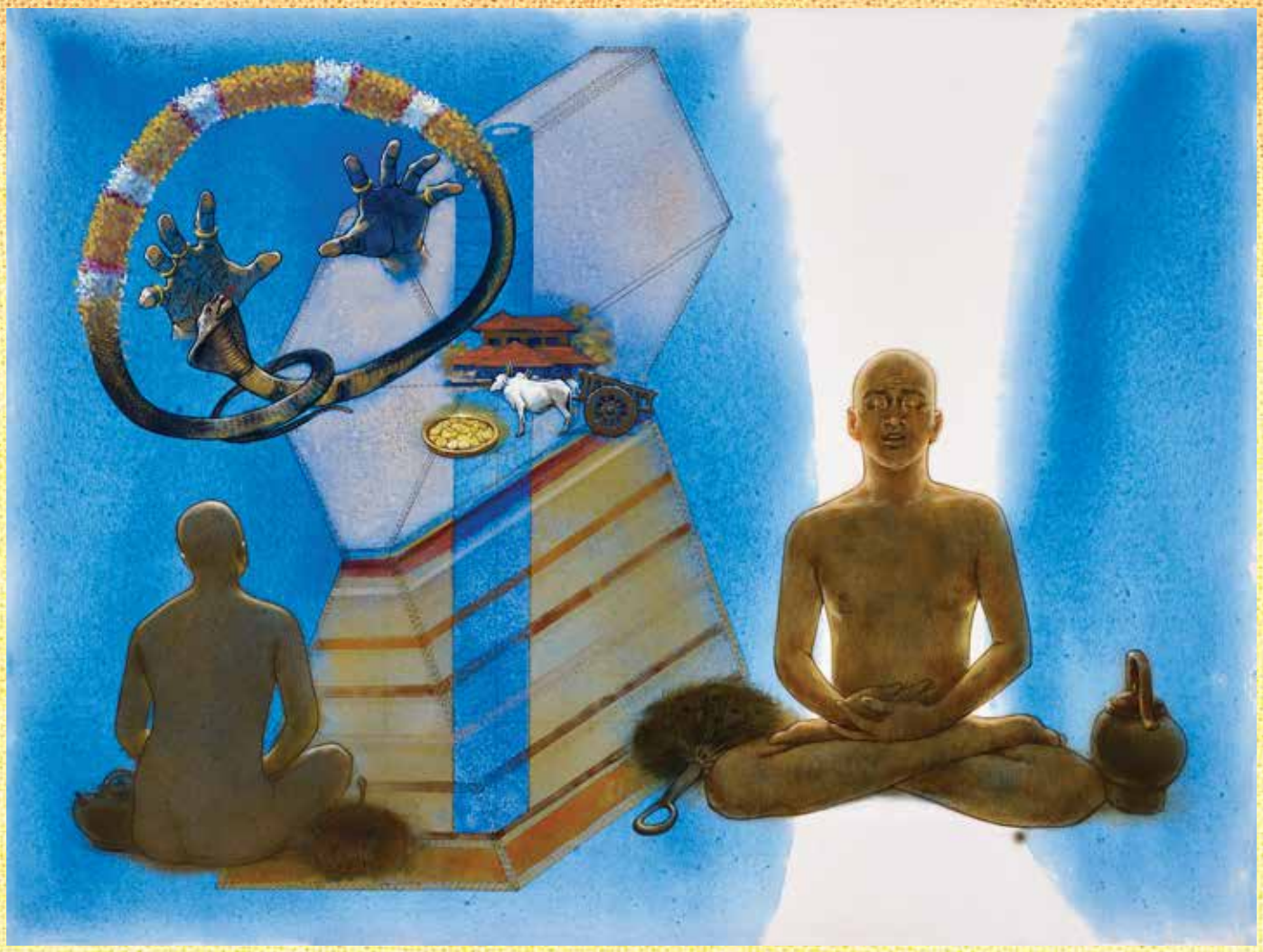

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

इन्द्रजाल सम देख जग, निज अनुभव रुचि लात। अन्य विषय में जात यदि, तो मन में पछतात ।।३९।।

अर्थ: विश्व में सबसे बडा सुख का केन्द्र और सत्य तो अपना शुद्धात्मा ही है। जिसे इस सत्य तत्व का भावभासन हो गया ऐसे योगी को; तथा जिसने समस्त परिग्रह का त्याग करके एक शुद्धात्मा को ही निज संपत्ति मान लिया हो, उसे समस्त लोक इंद्रजाल में प्रस्तुत सर्पहार की भांति मिथ्या प्रतीत होता है। यदि किसी अन्य विषय भोगों में प्रवृत्ति करे तो मन-वचन-काय से उनका त्याग करके पश्चाताप करता है कि उन विषयों में पडकर ये मैंने शुद्धात्मा का कैसा अहित कर दिया।

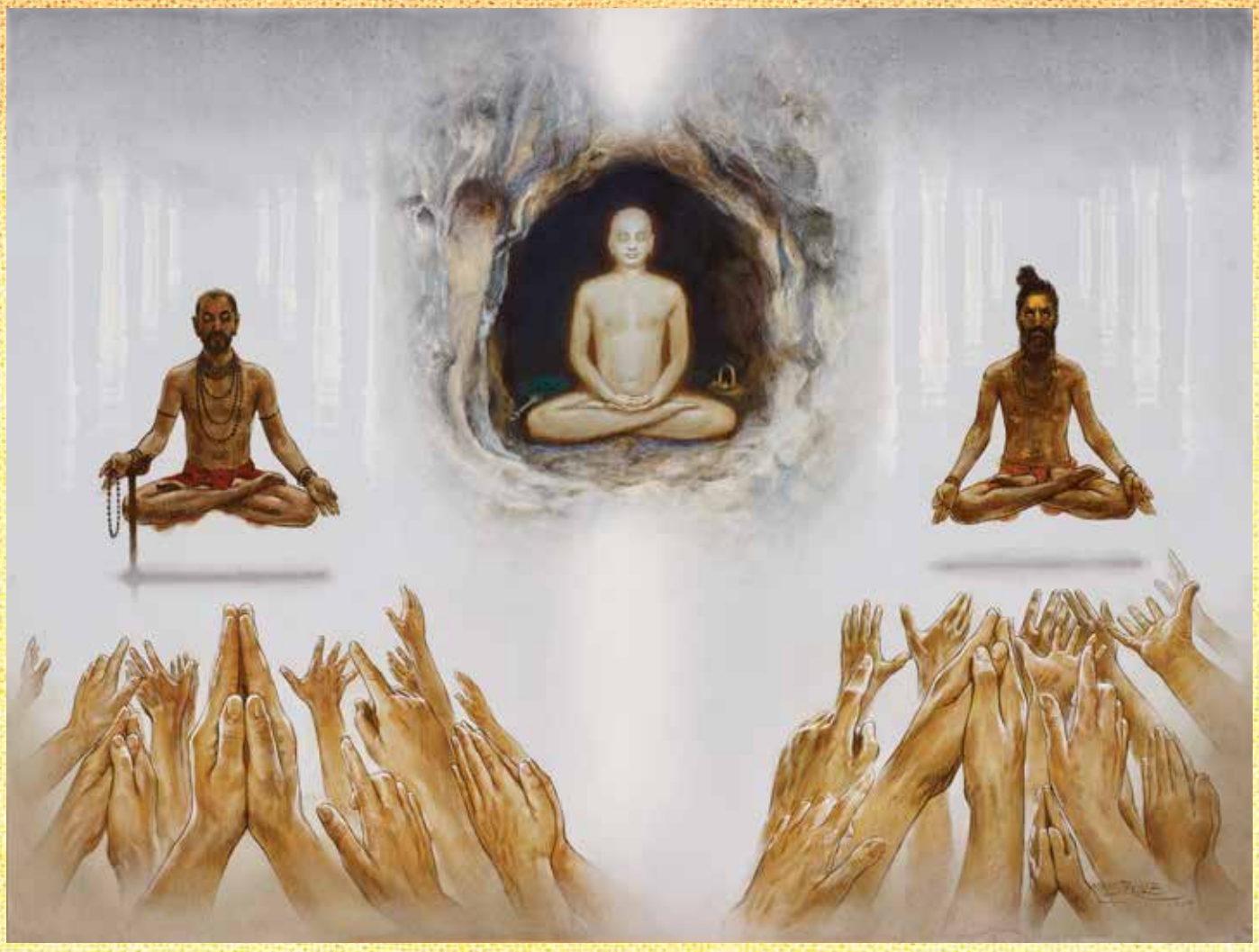

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

निर्जनता आदर करत, एकांत सवास विचार। निज कारजवश कुछ कहे, भूल जात उस बार ।।४०।।

अर्थ: जिन्हें आत्मा प्रिय है उन्हें न जगत और ना ही जगत का प्रपंच ही प्रिय हो सकता है। जो मनोरंजन की वांछा लिये स्वार्थ वश आये भक्तों को तन्त्र-मंत्र इत्यादि मिथ्या प्रपंचों में उलझाते हैं व सांसारिक लाभ-अलाभ की चर्चा में जिनका उपयोग लगता है वे सच्चे साधु नही। जिन्हें एकमात्र शुद्धात्मा की ही रुचि है ऐसे साधु निर्जन पर्वत वनादिक में व गुफा-कन्दराओं जैसे एकान्त स्थान में ही निवास करते हैं।

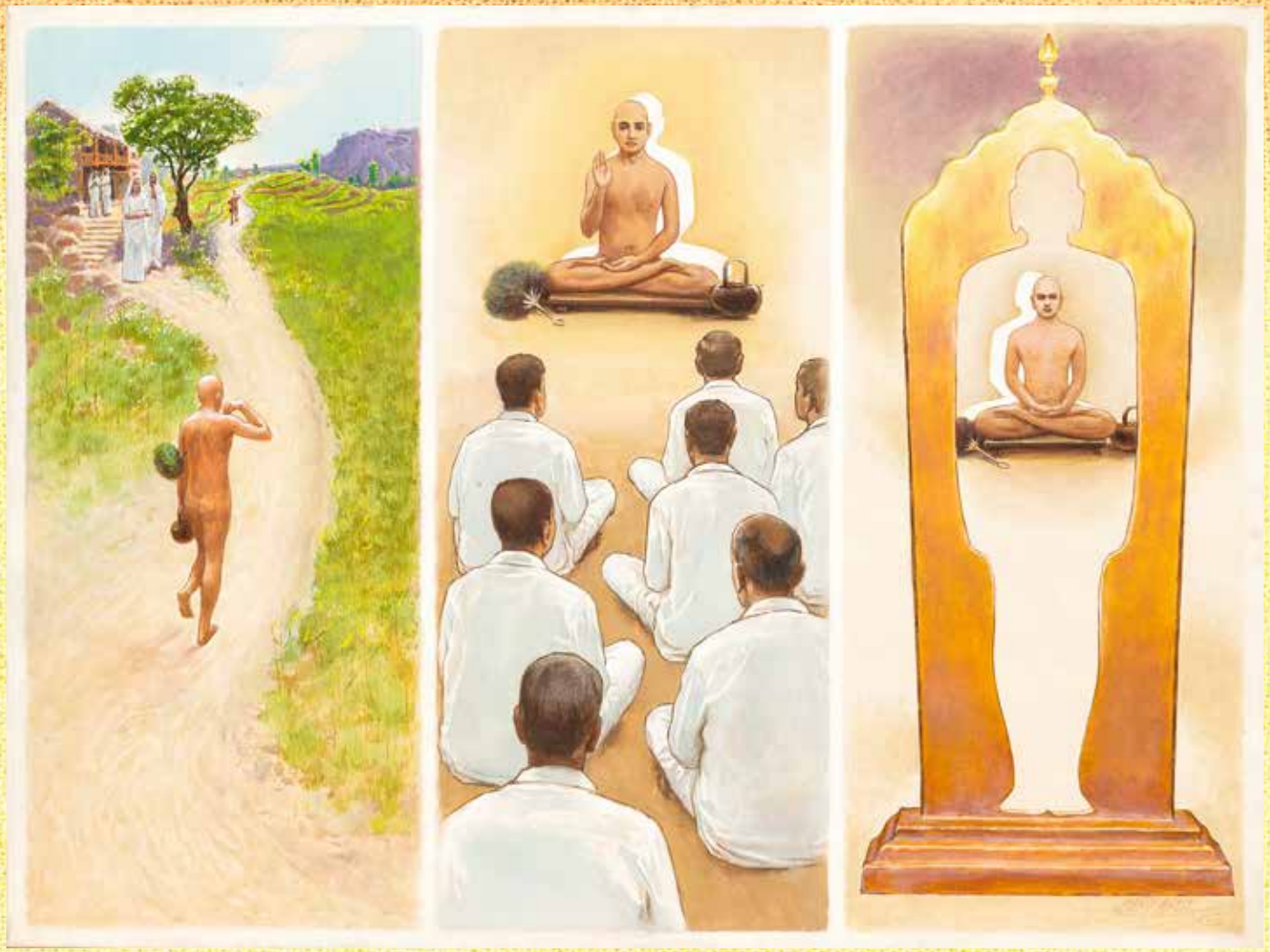

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

देखत भी नहि देखते, बोलत बोलत नाहि। दृढ प्रतीत आतममयी, चालत चालत नाहि ।।४१।।

अर्थ: जिसने आत्मस्वरूप के विषय में स्थिरता प्राप्त कर ली है ऐसे ज्ञानी मुनिराज बोलते हुए भी नही बोलते, चलते हुए भी नही चलते और देखते हुए भी नही देखते हैं। जिन्होंने शुद्धात्मा को ही अपनी श्रद्धा का विषय बना लिया है, जिन्हें आहार के लिये चलते हुए भी चलने का भाव नही आता, संस्कार अथवा दूसरों के संकोच से धर्मादि का उपदेश देते हुए भी देने का भाव नही आता, जिनप्रतिमाओं को देखते हुए भी देखने का भाव नही होता तो समझना कि उनका क्रिया की ओर नही अनुभव की ओर झुकाव है। उनकी परिणति में सिद्ध स्वभावी आत्मा ही झलकता है।

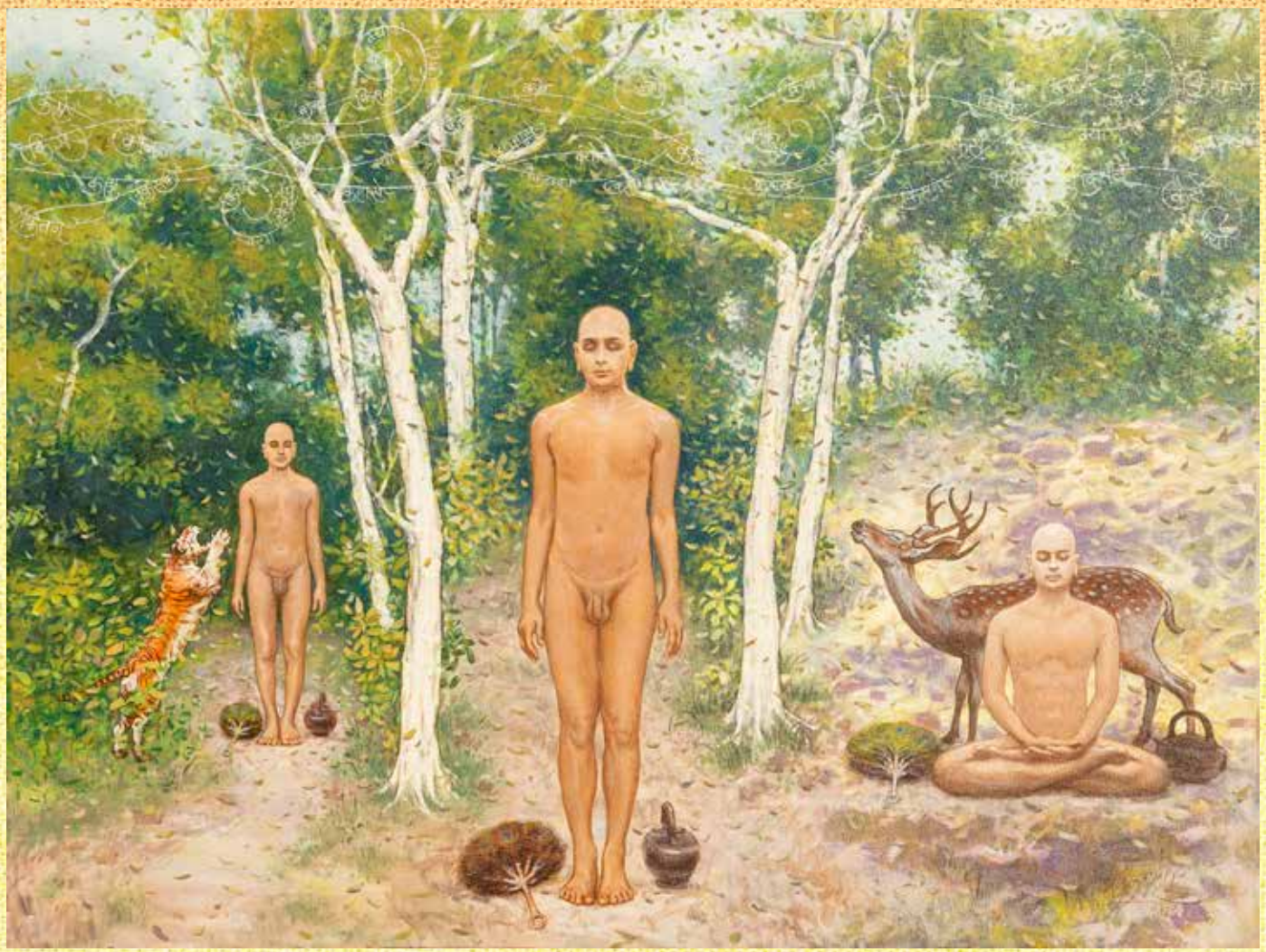

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

क्या कैसा किसका किसमें, कहाँ यह आतम राम। तज विकल्प निज देह न जाने, योगी निज विश्राम ।।४२।।

अर्थ: जो विकल्पों में उलझेगा उसका भव कभी नही सुलझेगा इस यथार्थ अभिज्ञान को हृदय में धारण करने वाले वीतरागी मुनिराज; यह स्वरूप किसका है? किसके समान है? इसका स्वामी कौन? यह किससे होता है? कहाँ इसका निवास है? इत्यादि किसी भी प्रकार के विकल्प में उलझे बिना समरसी शुद्धात्मा के ही रसास्वादन में लीन हैं। उन्हें अपने शरीर तक की चिन्ता नहीं है तो शरीर से भिन्न वस्तुओं की तो बात ही क्या?

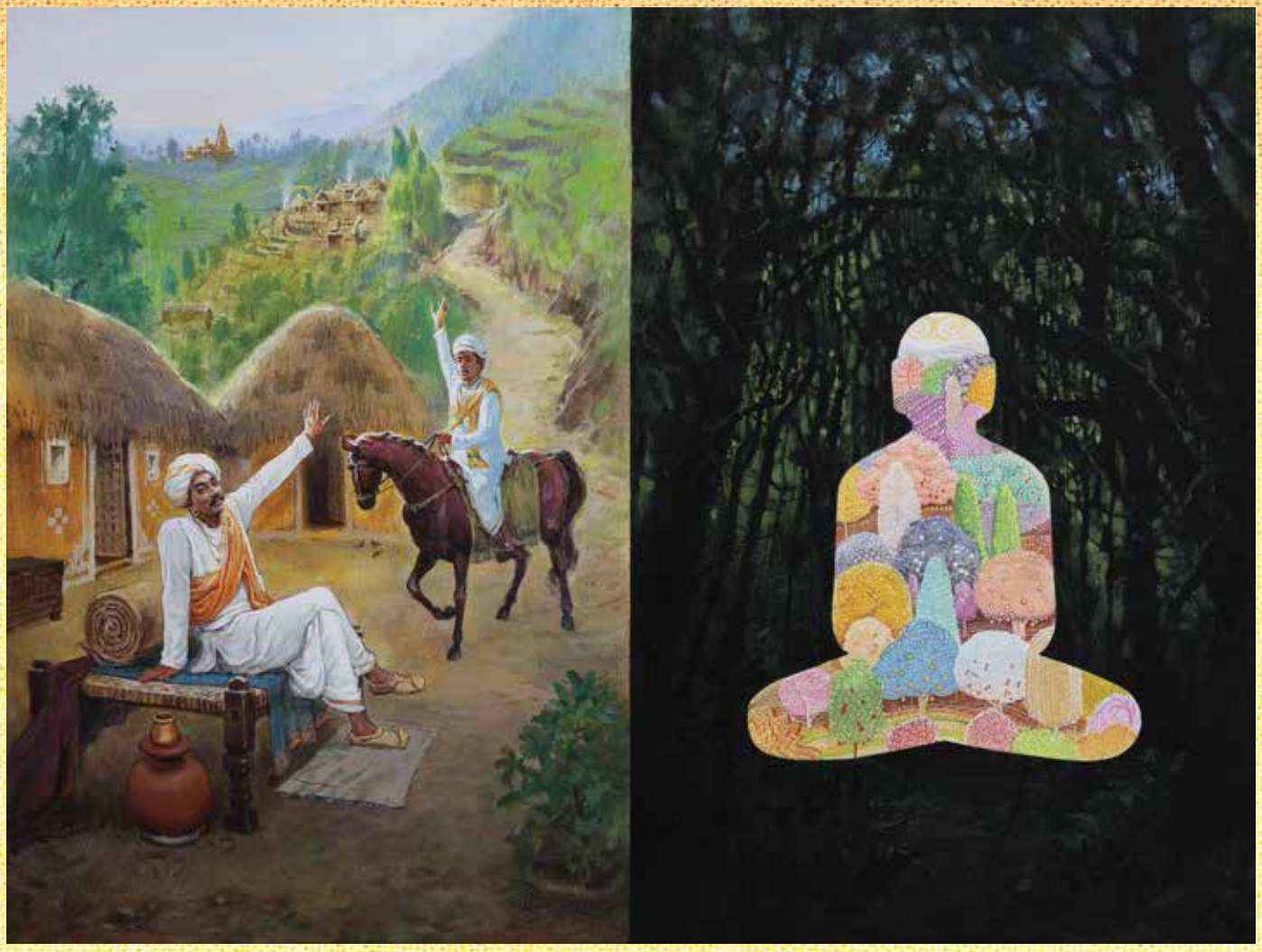

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

जो जामें बसता रहे, सो तामें रुचि पाय। जो जामें रम जात है, सो ता तज नहिं जाय ।।४३।।

अर्थ: जो मनुष्य जिस नगरादिक में अपने स्वार्थ की सिद्धि होने से उसी स्थान पर निवासी बनकर रहने लग जाता है और उसमें आनन्द का अनुभव करने लगता है, उसे अब कहीं ओर जाने का विकल्प नही; अब नवीन स्थान की वांछा नही। किसी के बार-बार समझाने पर भी उस स्थान को छोडने का विकल्प नही उसीप्रकार जब योगीजनों को जगत से विरक्त शुद्धात्मा के देश में आत्मसुख का स्वार्थ ख्याल आता है तब वे अन्य किसी वस्तु अथवा सामग्री की ओर दृष्टि नही करते अपितु अपूर्व आनन्द का अनुभव होता रहने से उस की अध्यात्म के सिवाय दूसरी जगह प्रवृत्ति नहीं होती।

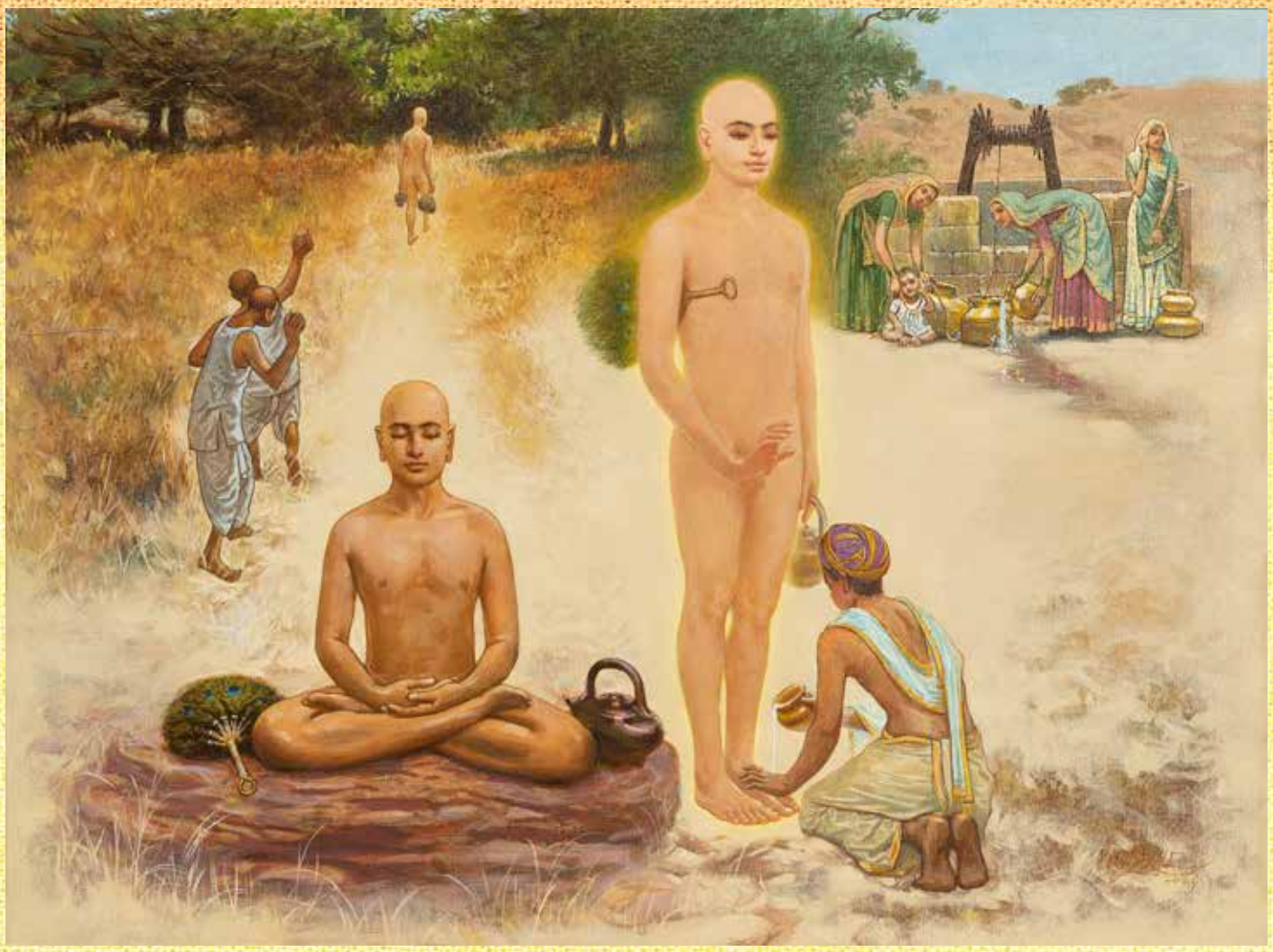

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

वस्तु विशेष विकल्प को, नहि करता मतिमान। स्वात्मनिष्ठता से छूटत, नहि बंधता गुणवान ।।४४।।

अर्थ: जिन्हें अध्यात्म से प्रेम है वे पर की चिंता नही करते, वास्तव में चिन्ता तो उसी की होती है जो अपना नही होता परन्तु मोहवश उसे अपना मानकर बैठ जाते है; योगिजन तो परमार्थ जीवन जीते है, वे शुद्धात्मा जो स्व पदार्थ है उसे ही स्वयं अनुभव करते हैं। एकबार बलराम मुनिराज जब नगर में आये तो उनके शरीर की सुन्दरता देख स्त्रियाँ पात्र की जगह अपने बच्चों के गले में ही रस्सी बाँधकर उन्हें कुएँ में डालने लगी; यह देख मुनिराज पुनः वन की ओर गमन कर गये। मुनिराज को शरीर की सुन्दरता-कुरूपता का आकर्षण नही अतः उस जातिगत राग-द्वेष पैदा न होने से वे कभी बंधन को प्राप्त नही होते अपितु समस्त बंधनों से मुक्त ही होते हैं।

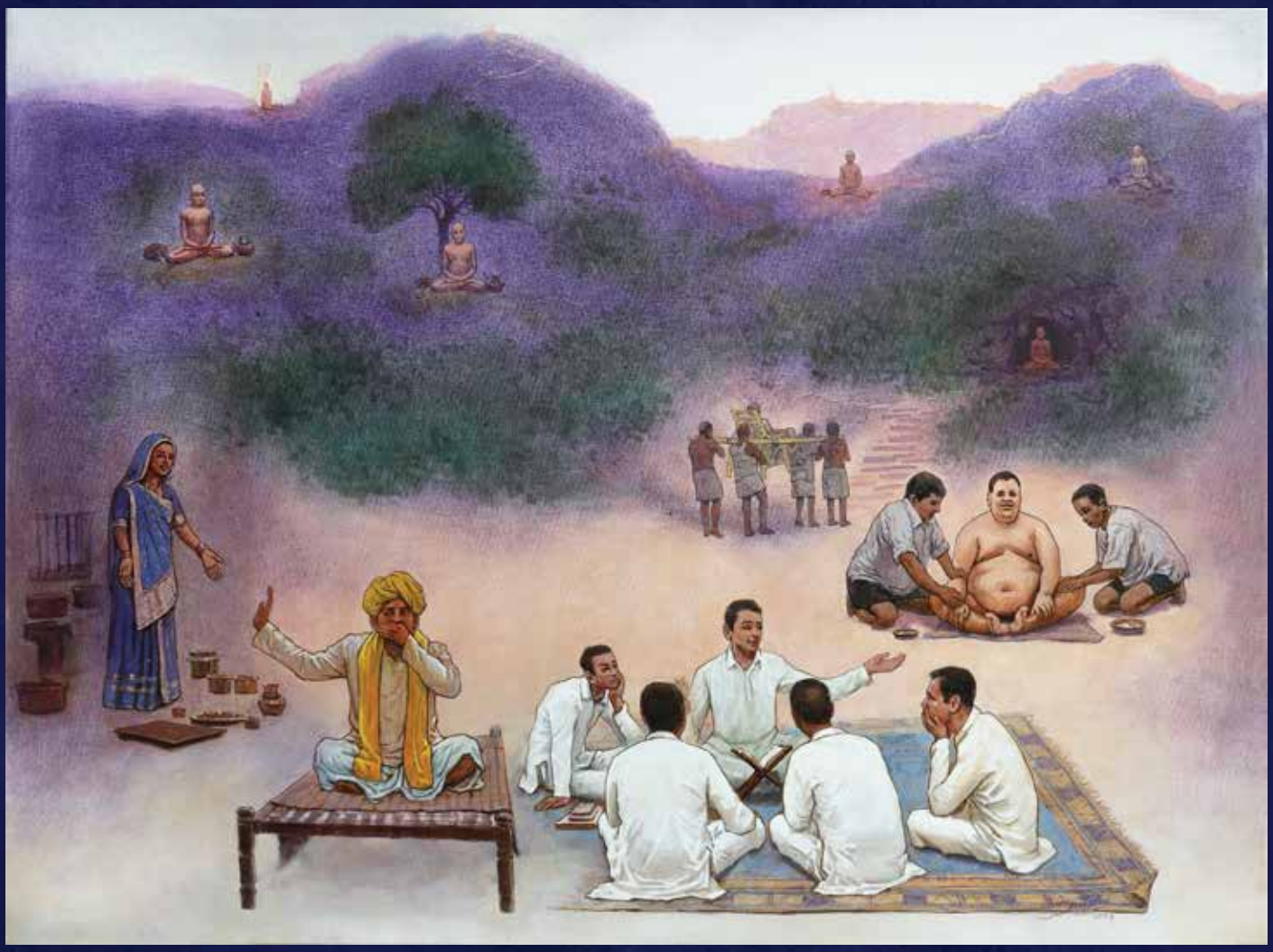

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

पर पर तातें दुःख हो, निज निज ही सुखदाय। महापुरुष उद्यम किया, निज हितार्थ मन लाय ।।४५।।

अर्थः यह देह कभी अपनी नही हो सकती, इसे कभी आत्मा के सदृश नही बनाया जा सकता। वास्तव में इसके स्वभाव में ही कुरूपता है, मिथ्यापना है। परन्तु इस सत्य को स्वीकार करने वाले बहुत थोडे हैं, जो इसे स्वीकारते हैं वे निराकुल होते हैं परन्तु जो इसे स्वीकार ना करके उसी के पालन-पोषण में लगे रहते हैं वे सदा दुखी रहते हैं। इसलिये तीर्थंकरादिक महापुरुषों ने स्वरूप में स्थिर होने के लिये अनेक प्रकार के तप आदि करने में निद्रा-आलस्य रहित अप्रमत्त स्वभाव की उत्कर्षता को ही साधा है।

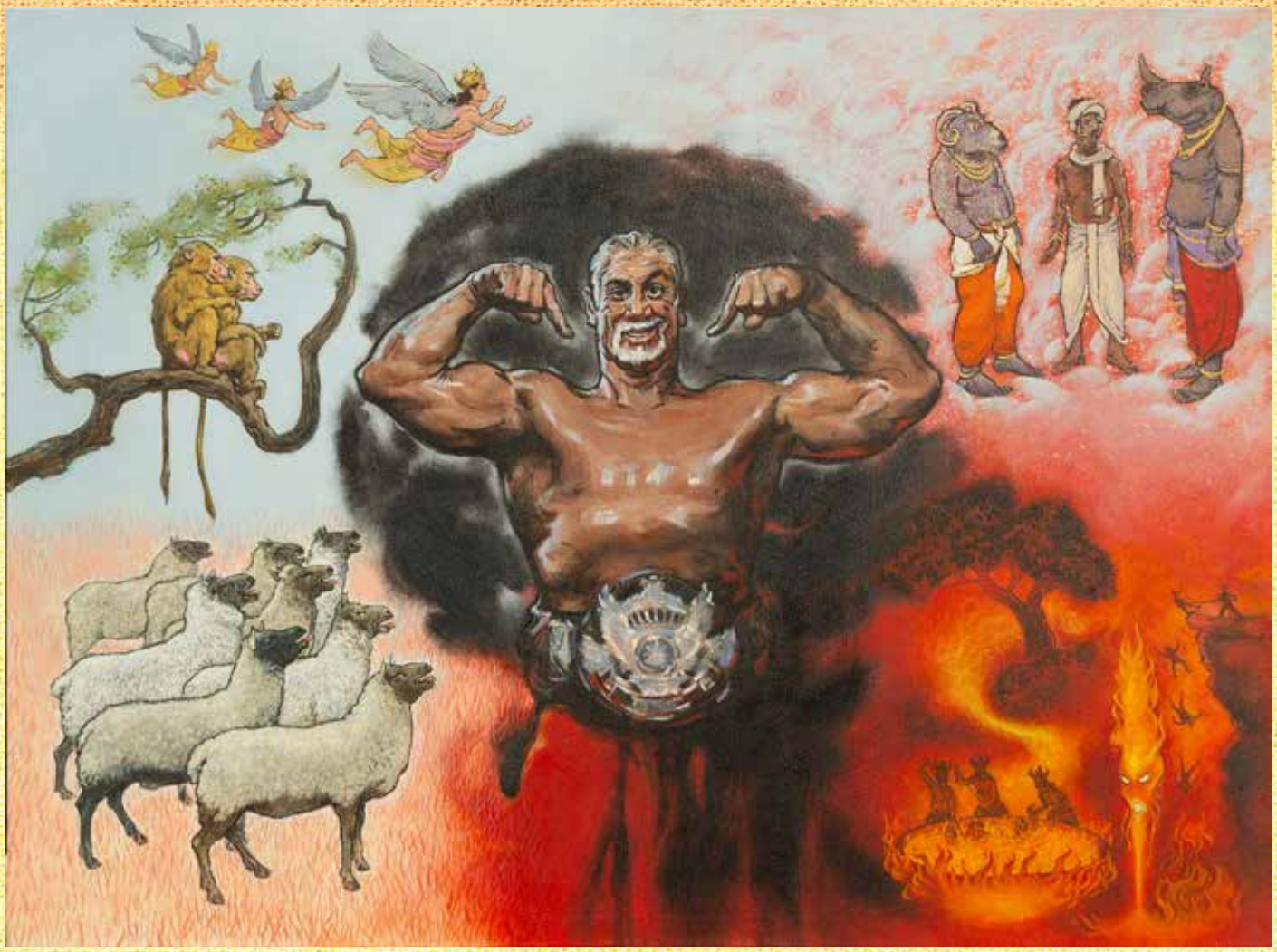

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

पुद्गल को निज जानकर, अज्ञानी रमजाय। चहुँगति में ता संगको, पुद्गल नहीं तजाय ।।४६।।

अर्थ: कदाचित कोई शरीर को ही अपना माने तो उसमें हानि क्या है? ऐसी जिज्ञासा कभी हो तो विचारना कि जो हेय-उपादेय तत्वों को तो नही जानता, शरीरादिक पुद्गल को आत्मरूप और आत्मा को पुद्गलरूप मानता है उस जीव के साथ नरकादिक चार गतियों में वह पुद्गल अपना संबंध नही छोडता। अर्थात वह प्रत्येक भव में पुद्गल के साथ ही संबंध करेगा, कभी उससे मुक्त नही हो सकेगा।

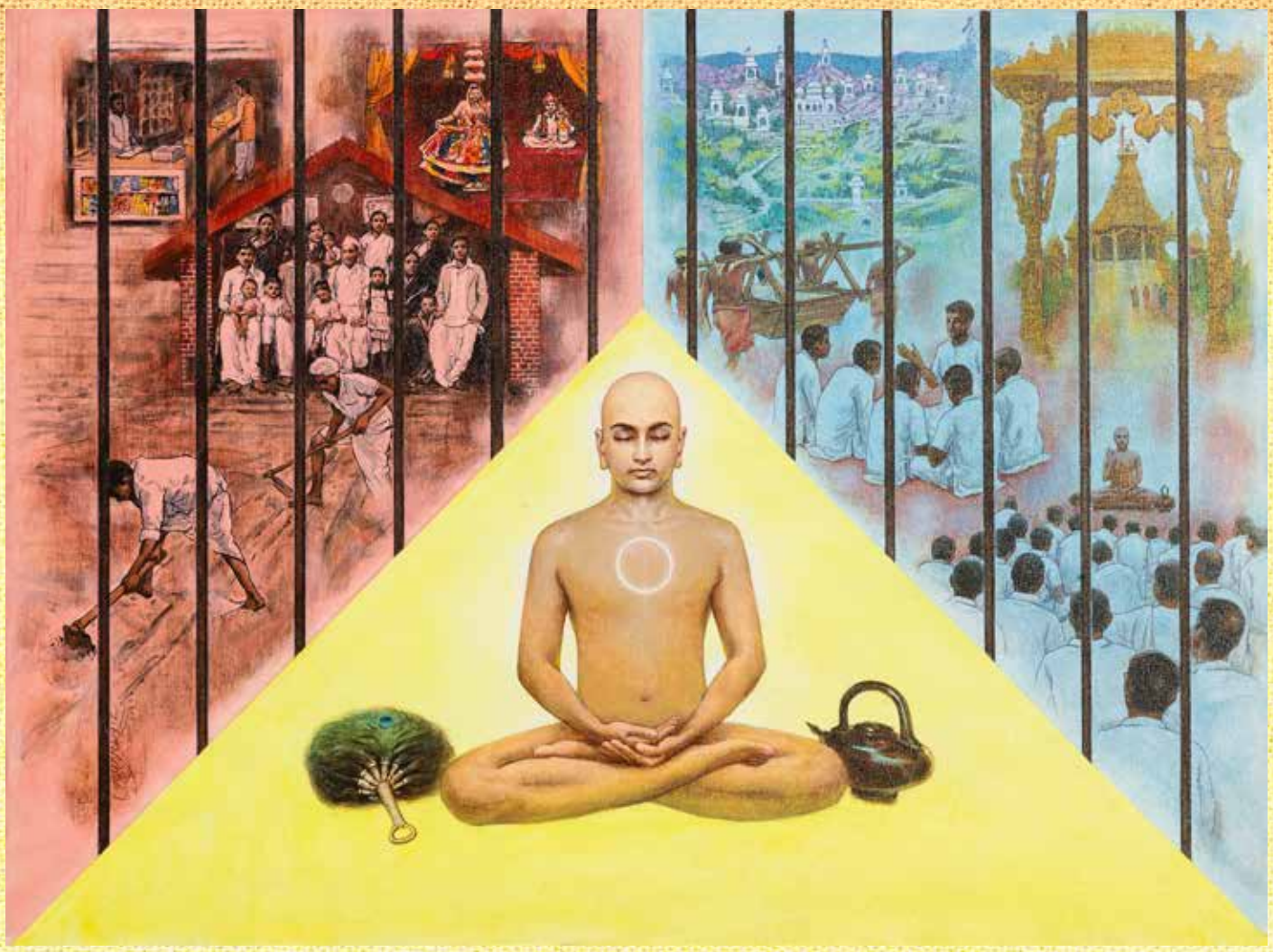

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

ग्रहण त्याग से शून्य जो, निज आतम लवलीन। योगी को हो ध्यान से, कोइ परमानन्द नवीन ।।४७।।

अर्थ: चाहे मनुष्यकृत इन्द्रिय भोग हों अथवा स्वर्गगत दिव्य सामग्री, योगिजन देहाश्रित सुख में कदापि बंध को प्राप्त नही होते। वे तो देह से निवृत अपनी आत्मा में ही स्थित रहने वाले हैं, उनके व्यवहार में भी प्रवृत्ति-निवृत्ति नही अपितु स्वात्मवृत्ति ही है। ऐसे योगी पुरुष को आत्मध्यान द्वारा वचनों से अगोचर परम, जो दूसरों को नही हो सकता ऐसा नवीन आनन्द उत्पन्न होता है।

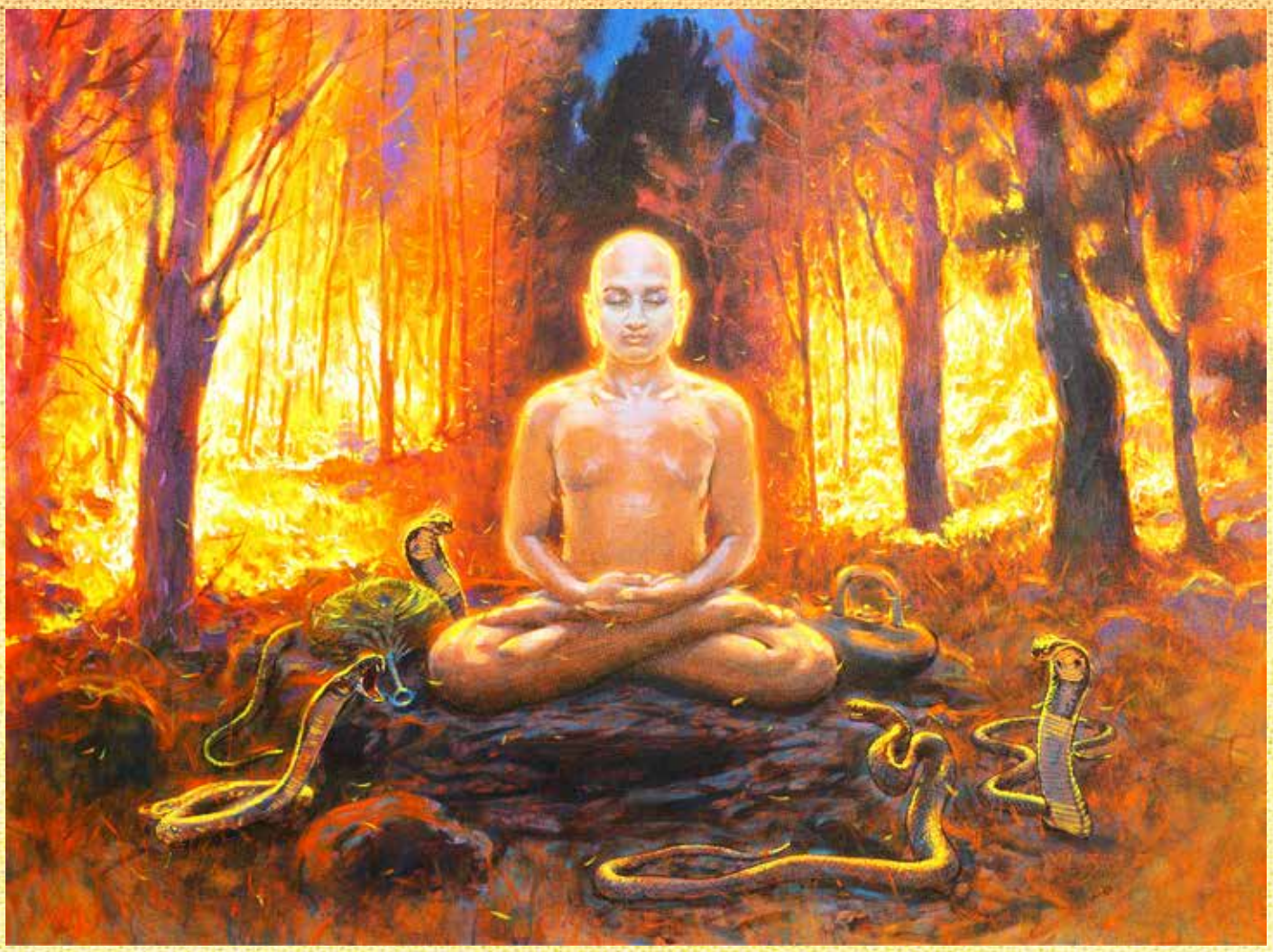

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

निजानंद नित दहत है, कर्मकाष्ठ अधिकाय। बाह्य दुःख नहिं वेदता, योगी खेद न पाय ।।४८।।

अर्थ: जैसे अग्नि ईंधन को सर्वथा भस्म कर देती है, अग्नि के सम्पर्क से ईंधन के सर्वगुणों का नाश हो जाता है, उसका बल अथवा शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं; उसीप्रकार आत्मा में उत्पन्न निजानन्द, हमेशा से चले आये प्रचुर कर्मों की सन्तति को जला डालता है, आत्मप्रदेशों से उनका सर्वथा अभाव कर देता है। उस आनन्द से सहित योगी बाहरी उपसर्ग-परिषहों के क्लेश के अनुभव से भी रहित हैं, वे कदापि खेद को प्राप्त नही होते।

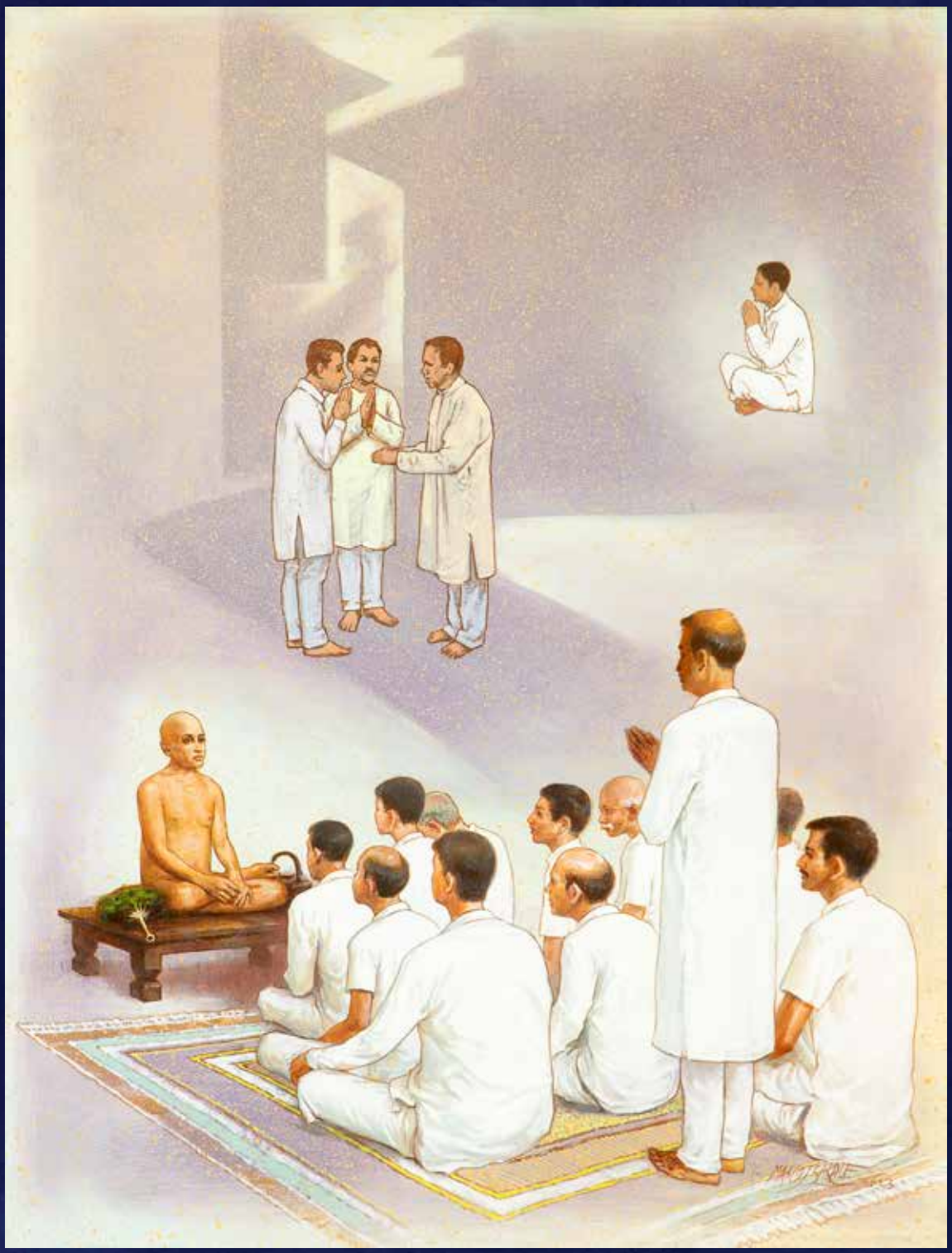

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

पूज्य अविद्या–दूर यह, ज्योति ज्ञानमय सार। मोक्षार्थी पूछो चहो, अनुभव करो विचार ।।४९।।

अर्थ: जगत में जिसप्रकार सूर्य ही एकमात्र प्रकाश का उद्योतक है, जिसकी उपस्थिति समस्त अंधकार को ध्वस्त कर देती है उसीप्रकार शुद्धात्मा के लिये अविद्या को दूर करने वाली, स्वार्थ को प्रकाशन करने वाली व इन्द्रादिक द्वारा पूज्य ज्ञान ज्योति ही एकमात्र उत्कृष्ट साधन है। मोक्ष के इच्छुक मुमुक्षु जीवों को गुरु आदिक से उसी के विषय में पूछना चाहिये, उसी की वांछा करनी चाहिये और उसे ही अनुभव में लाना चाहिये।

OIL ON CANVAS | 36" x 48"

जीव जुदा पुद्गल जुदा, यही तत्व का सार। अन्य कछू व्याख्यान जो, याही का विस्तार ।।५०।।

अर्थ: 'जीव शरीरादिक से भिन्न है, शरीरादिक जीव से भिन्न है'। निश्चय से समस्त तीर्थंकरों-गणधरों की वाणी का सार यही है। इसी में सात तत्व, छह द्रव्य, पाप-पुण्य व शुद्धात्मा की अनुभूति समाहित है। इसके अलावा जितना भी जिनवाणी का कथन है, वह इसी का विस्तार मात्र है।

OIL ON CANVAS | 48" x 36"

इष्टरूप उपदेश को, पढे सुबुद्धी भव्य। मान अमान में साम्यता, निज मन से कर्तव्य ।।
आग्रह छोड स्वग्राम में, वा वनमें सु वसेय। उपमा रहित स्वमोक्षश्री, निजकर सहजहि लेय ।।५१।।

अर्थ: आचार्य पूज्यपाद द्वारा विरचित गागर में सागर स्वरूप इस इष्टोपदेश ग्रन्थ के तत्व का जिसने भलीप्रकार अर्थ अवधारण किया है और अब जो हित-अहित का विवेक रखते हुए परीक्षा करने में निपुण हुआ है ऐसा भव्य जीव समस्त मान-अपमान छोडकर आत्मज्ञान पूर्वक साम्यभाव का ही पुरुषार्थ करता है। मिथ्यात्व व कषायों के त्याग पूर्वक परम्परा से पुरुषार्थ करते हुए व कर्मों की हानि करते हुए वह भव्य शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है।

इष्टोपदेश

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ।। १ ।।

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता ।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता ।।२।।

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकम् ।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान् ।।३।।

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी ।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति ? ।।४।।

हृषीकजमनातङ्कं दीर्घ कालोपलालितम् ।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव ।।५।।

वासनामात्रमेवैतत् सुखं दुःखं च देहिनाम् ।
तथाह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि ।।६।।

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते नहि ।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः ।।७।।

वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः ।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते ।।८ ।।

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे ।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ।। ९ ।।

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति ।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते ।।१०।।

रागद्वेषद्वयीदीर्घ – नेत्राकर्षणकर्मणा ।
अज्ञानात् सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ।।११।।

विपद्भवपदावर्ते, पदिकेवातिवाह्यते ।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः, प्रचुराः विपदः पुरः ।।१२।।

दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना ।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा ।। १३ ।।

विपत्तिमात्मनो मूढः, परेषामिव नेक्षते ।
दह्यमानमृगाकीर्णवनान्तरतरुस्थवत् ।।१४।।

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं, कालस्य निर्गमम् ।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम् ।।१५।।

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः ।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलिम्पति ।। १६ ।।

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान् ।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः ।।१७।।

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि ।
स कायः सन्तापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ।।१८।।

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम् ।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम् ।।१९।।

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः ।।२०।।

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः ।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः ।।२१।।

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः ।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ।।२२।।

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः ।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचा ।।२३।।

परीषहाद्यविज्ञानादास्त्रवस्य निरोधिनी ।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा ।।२४।।

कटस्य कर्त्ताहमिति, सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः ।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, सम्बन्धः कीदृशस्तदा ।। २५ ।।

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ।।२६।।

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः ।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ।।२७।।

दुःखसंदोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनोवाक्कायकर्मभिः ।।२८।।

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा ।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले ।।२९।।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा ।। ३०।।

कर्म कर्महिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः ।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति ।।३१।।

परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव ।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत् ।। ३२।।

गुरूपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरान्तरम् ।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ।।३३।।

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः ।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ।।३४।।

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्र मन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत् ।।३५।।

अभवच्चित्तविक्षेप, एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्वं निजात्मनः ।।३६।।

यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ।।३७।।

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।।३८।।

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते ।।३९।।

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम् ।।४०।।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति ।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति ।।४१।।

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्केत्यविशेषयन् ।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ।।४२।।

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम् ।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ।।४३।।

अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते ।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते ।।४४।।

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ।।४५।।

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं, योऽभिनन्दति तस्य तत् ।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति ।।४६।।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिःस्थितेः ।
जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनः ।।४७।।

आनन्दो निर्दहत्युद्धं, कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दुःखेष्वचेतनः ।।४८।।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत् ।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः ।।४९।।

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः ।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ।।५०।।

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य ।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः ।। ५१ ।।

Manoj Sakale

मनोजकुमार महावीर सकाले, एक प्रसिद्ध भारतीय चित्रकार हैं, जिनका जन्म १९७५ में भारत के महाराष्ट्र राज्य के सांगली के पास एक छोटे से गाँव नांद्रे में हुआ। आपने अपने जीवन की शुरुआत एक साधारण ग्रामीण परिवेश में की। गाँव में अपनी स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद सांगली के कलाविश्व महाविद्यालय में चित्रकला का अध्ययन किया और फिर पुणे के अभिनव कला महाविद्यालय में ललित कला के क्षेत्र में आगे की पढाई की।

वर्तमान में, आप मुंबई में कला जगत के मुख्य केंद्र में स्थापित हैं, जहाँ आप शहरी और ग्रामीण बचपन के विभिन्न पहलुओं पर काम कर रहे हैं। सैकडों कला के विद्यार्थियों को आप निष्णात कर चुके हैं व भारतीय कला के विकास में एक महत्त्वपूर्ण योगदान देकर वे समाज में जागृति लाने का कार्य कर रहे हैं।

आपने कला के माध्यम से सुंदरता लाने का प्रयोग किया, खासकर महाराष्ट्र के समृद्ध और सौंदर्यपूर्ण सांस्कृतिक चरित्र को चित्रित करते हुए, जो अब विलुप्त हो रहे हैं। कला में आपके योगदान के लिए आपकी एक पेंटिंग को कैमलिन आर्ट फाउंडेशन द्वारा पुरस्कृत किया गया और आपको प्रतिष्ठित यूरो आर्ट टूर के लिए चुना गया। बॉम्बे आर्ट सोसाइटी ने भी आपको बेंद्रे हुसैन छात्रवृत्ति प्रदान की। आपने कई प्रदर्शनियों में भाग लिया और महाराष्ट्र और गुजरात में कला महाविद्यालयों में कार्यशालाएँ आयोजित कीं।

सन् २०२२ में उन्हें भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविन्द जी का भी साक्षात चित्र बनाने का अवसर प्राप्त हुआ। साथ ही समय-समय पर आपको बम्बई आर्ट सोसाइटी, आर्ट सोसाइटी ओफ़ इण्डिया व कैमल आर्ट फाउण्डेशन जैसे भारतीय संस्थानों व द सैन डियागो वाटरकलर सोसाइटी, यु.एस.ए. जैसे विदेशी कला संस्थानों से भी पुरुस्कृत किया जा चुका है। आपने सामूहिक व व्यक्तिगत कई प्रदर्शनियाँ सम्पूर्ण भारत में लगाई हैं, सर्वत्र आपकी कला ने ख्याति ही प्राप्त की। आपको व्यक्तिचित्र कला में अत्यंत रुचि हैं। बहुत से संतो, महानुभावों व ज्ञानियों के व्यक्तिचित्र भी आपने निर्मित किये है।

आपकी प्रारंभ से ही धार्मिक साहित्य को चित्रकला द्वारा जीवन्त करने की रुचि रही है, आपके द्वारा पूर्व में भी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के जीवन पर एवं भगवान महावीर स्वामी परम्परा जैसे विषयों पर कार्य हुआ है। गुरु कहान कला संग्रहालय द्वारा संचालित जैन सिद्धान्तों को चित्र रूप में रूपान्तरित करने के कार्य की आपने सदा अनुमोदना की है और इष्टोपदेश ग्रन्थ पर आधारित इस कला श्रृंखला के निर्माण का कार्य कर आपने इस प्रभावना के कार्य में अवश्य ही अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है।

गुरु कहान कला संग्रहालय, सोनगढ

श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई लगभग अनेक वर्षों से अथक श्रम करते हुए पूरे भारत तथा विश्वभर में भी जिनशासन के तत्त्व–सिद्धांत और विचारों का भरपूर प्रचार कर रहा है। जिसके आधार अध्यात्म युगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा उनकी प्राणी–मात्र के कल्याण की भावना ही है। इसी कडी में गुरुदेवश्री की साधनास्थली सुवर्णपुरी सोनगढ में सन् २०१८ में भारत के अनेक गणमान्य लोगों और हजारों मुमुक्षु साधर्मियों की उपस्थिति में गुरु कहान कला संग्रहालय का भव्य उद्घाटन हुआ। जिसमें तीर्थंकर परमात्मा की वाणी में आये अनेक तत्त्व एवं सिद्धांतों, पू. गुरुदेवश्री तथा पू. बहिनश्री के जीवनदर्शन एवं वचनामृतों पर आधारित कला प्रदर्शनी का संयोजन किया जा रहा है। विगत वर्षों में विश्वभर के अनेकों साधर्मियों, पर्यटकों तथा विद्वानों द्वारा कला संग्रहालय की सराहना की गयी है एवं इस प्रदर्शित कला को जीवनोपयोगी सिद्ध किया गया है। यदि आप सब भी लाखों मुमुक्षु साधर्मियों की तरह अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं, तो एक बार अवश्य पधारें... गुरु कहान कला संग्रहालय, सोनगढ.

GURU KAHAN
ART MUSEUM

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust
302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg, Vile Parle (West), Mumbai - 400 056. INDIA.
Tel. No.: +91 22 2613 0820 / 2610 4912

info@vitragvani.com www.vitragvani.com vitragvanee /c/vitragvanii

Guru Kahan
Art Museum App

GURU KAHAN ART MUSEUM
Guru Kahan Art Museum, Shree Digambar Jain Swadhyay Mandir,
Songadh, Tah. Sihor, 364250. Saurashtra, Gujarat, India.

info@gurukahanmuseum.org gurukahanmuseum.org +918209571103
gurukahanmuseum Vitragvani_GKAMS /c/gurukahanartmuseum

9 789381 057551